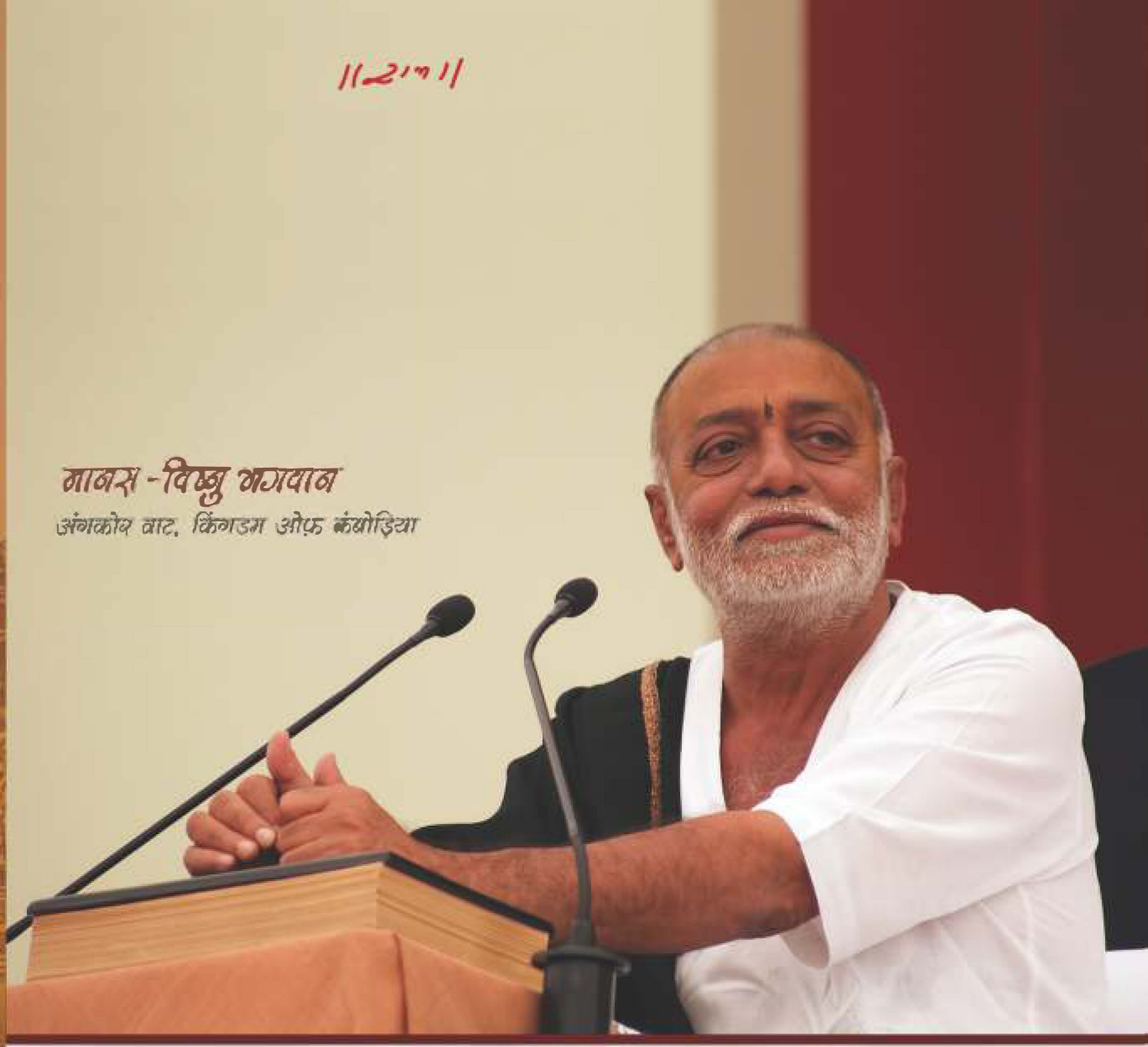

॥८१७॥

मानस - विष्णु भगवान

अंगकोर वाट, किंगडम ओफ़ कंबोडिया

॥ रामकथा ॥

मोरारिबापू

बिष्नु जो सुर हित नरतनु धारी । सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी ॥
संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना । उपजहिं जासु अंस तें नाना ॥

|| रामकथा ||
मानस-विष्नु भगवान

मोरारिबापू

अंगकोर वाट, किंगडम ओफ़ कंबोड़िया

दिनांक : ०७-०३-२०१५ से १५-०३-२०१५

कथा-क्रमांक : ७७३

प्रकाशन :
फरवरी, २०१६

प्रकाशक
श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट,
तलगाजरडा (गुजरात)
www.chitrakutdhamtalgajarda.org

कोपीराईट
© श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट

संपादक
नीतिन वडगामा
nitin.vadgama@yahoo.com

राम-कथा पुस्तक प्राप्ति
सम्पर्क-सूत्र :
ramkatha9@yahoo.com

ग्राफिक्स
स्वर अेनिम्स

प्रेम-पियाला

विश्व का सबसे पुराना विष्णुमंदिर जहां पर है ऐसे कम्बोड़िया में दिनांक ७-३-२०१५ से १५-३-२०१५ दरमियान बापू ने रामकथा का गान किया। 'मानस-विष्नुभगवान' पर केन्द्रित हुई इस कथा में बापू ने 'मानस' के परिप्रेक्ष्य में अपना निजी दर्शन व्यक्त किया। बिापू ने भगवान विष्णु के स्थूल विग्रह का परिचय दिया और साथ ही उनके बारे में विशिष्ट चिंतन भी प्रस्तुत किया।

भगवान विष्णु के चतुर्भुज रूप के संदर्भ में बापू ने कहा, भगवान विष्णु की चार भुजा है और हमारी आस्था ने विष्णु के चार हाथ में चार वस्तु पकड़वा दी है – शंख, चक्र, गदा, पद्म। भगवान विष्णु के हाथ में जो शंख है ये वाणी का प्रतीक है। हमारी वाणी शंख की तरह धवल हो, उज्ज्वल हो। दूसरा, चक्र। चक्र गति का प्रतीक है। चक्र परिवर्तित जीवन का प्रतीक है। तीसरा है गदा और चौथा पद्म। गदा कठोरता का प्रतीक है, पद्म कोमलता का प्रतीक है। गदा एक पकड़ का प्रतीक है, कमल असंगता का प्रतीक है। भगवान विष्णु के हाथ में चार चीजें हमारी मनीषा ने जो पकड़वाई है, वह बड़ी सांकेतिक है।

मंदिर की नगरी में बापू ने मंदिर की महिमा भी की और ऐसा निवेदन भी किया कि परमात्मा केवल मंदिर में ही नहीं है। बापू ने स्पष्ट शब्दो में कहा कि मंदिर मुझे अच्छे लगते हैं। मंदिर में बैठा देव प्यारा लगता है, लेकिन ये सूक्ष्म संदेश कहीं हमारे दिल में घर न कर जाय कि वहीं ही परमात्मा है। हमारे अंदर पूरा विश्व है। तुम अपने भीतर का संग करो। मंदिर की महिमा बड़ी है। दुनिया का एक अर्थ में बहुत बड़ा मंदिर यहां बिराजमान है। उनमें बैठे परमात्मा हमें पुकार रहे हैं कि आओ, आओ; लेकिन घर में भी मैं हूं वो भूलकर मत आओ। क्या मुस्कुराता हुआ बच्चा घर में परमात्मा का रूप नहीं है? बच्चा परमात्मा का पर्याय है। बच्चा परमात्मा का ट्रान्सलेशन है, भाषांतर है।

'शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं...' यह श्लोक का भाष्य भी बापू ने विशिष्ट ढंग से किया। और 'योगवाष्ठिय' के एक श्लोक में निर्दिष्ट कथाओं का स्मरण भी किया। विष्णु को व्यापकता का पर्याय समझते हुए बापू ने कहा, कौन है विष्णु? एक अर्थ में राम का अंश है; एक अर्थ में विष्णु का अवतार राम है। ये घड़े में पानी हो कि पानी में घड़ा हो। अत्र-तत्र-सर्वत्र वोही है, वो ही परमतत्त्व है। विष्णु का अर्थ भी तो व्यापक होता है। ऐसी व्यापकता कि कोई अनछूआ न रह जाय। ऐसी व्यापकता का नाम भगवान विष्णु है।

विष्णुलोक कम्बोड़िया की भूमि में 'मानस-विष्णुभगवान' के माध्यम से मोरारिबापू ने भगवान विष्णु के इर्द-गिर्द परिकम्मा की।

– नीतिन वडगामा

मानस-विष्नु भगवान

॥ १ ॥

परवश करे वो गुरु नहीं, वो तो पारधि है!

बिष्नु जो सुर हित नरतनु धारी । सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी ।।
संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना । उपजहिं जासु अंस तें नाना ।।

बाप! परमात्मा की असीम और अहेतु कृपा से ये कंबोड़िया राष्ट्र में रामकथा लेकर हम सब आये हैं। मैं मेरी बहुत प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। मैं यहां के ये किंगडम है, किंगडम ओफ वंडर, आप ने कहा; और किंगडम ओफ टेम्पल्स, जो डेप्युटी पी.एम.साहब ने यहां शब्द उच्चार किया। यहां के राष्ट्र के नेता जो इस किंगडम के नायक और पूरी कंबोडियन प्रजा के लिए सत्य, प्रेम और करुणा लेकर आया हूं। मैं बहुत-बहुत बधाई देता हूं, बहुत-बहुत शुभकामना व्यक्त करता हूं कि आप ने आकर व्यासपीठ को इतना आदर दिया। बहुत-बहुत शुक्रिया। और साथ-साथ भारत से यहां नियुक्त हमारे आदरणीय पटनायकजी, जो यहां के भारत के राजदूत है और आते ही व्यासपीठ से आदर देते हुए आपने कहा कि मैं आप का दूत हूं। यही तो भारतीय शालीनता है। मतलब? आप तो राजदूत है। लेकिन आपने कहा कि 'आप का दूत', यानी व्यासपीठ का, रामदूत भी है आप। मैं स्वागत करता हूं बहुत-बहुत। और आपने जो 'कंबोडियन रामायण' के बारे हमें कुछ जानकारी दी उसमें आपने श्री हनुमानजी को शादीसुदा बताया। बहुत-बहुत धन्यवाद! लेकिन मेरा हनुमान ब्याहे या न ब्याहे उससे कोई लेना-देना नहीं, सेतु बनना चाहिए। राष्ट्र में, विश्व में, धर्म-धर्म, वर्ग-वर्ग के बीच में सेतु होना चाहिए। यद्यपि हनुमानजी को कई नारियां ब्याही है! सब से पहली नारी तो ब्याही हनुमानजी से गति। गतिरूपी ऊर्जा उससे ब्याही है। दूसरी नारी ब्याही है उससे विद्या। 'जय हनुमान ज्ञान गुन सागर।' विद्या उसमें ओळघोळ हुई है। तीसरी नारी ब्याही है हनुमान से बुद्धि। 'बुद्धिमतां वरिष्ठं।' चौथी नारी मेरे हनुमानजी को ब्याही है वो 'रामभक्ति', उसने हनुमान का वरण किया है। पांचवीं नारी उसको वाणीरूपी देवी ब्याही है।

मुझे एक बार किसीने हमारे तुलसी एवोर्ड के समय प्रश्न पूछा था कि रामकथा में सभी वक्ता पुरुष ही है, स्त्री क्यों नहीं है? ये बात तो सही है। आज तक लोगों ने क्यों नहीं पूछा यही आश्चर्य है! और महिलामंडलों ने क्यों नहीं पूछा ये तो बहुत बड़ा आश्चर्य है! बात तो सही है कि कोई मातृशक्ति वक्ता क्यों नहीं है? लेकिन वाणी बोली है। शंकर थोड़े बोले हैं? वाणी बोली है। तो मातृशक्ति ही प्रवक्ता है। याज्ञवल्क्य थोड़े बोले हैं? उसकी वाणी बोली है। इसीलिए नारी शक्ति ने ही प्रवचन दिया है। कागभुशुंडि थोड़े बोले हैं? उसकी वाणी बोली है। जीभ नारीशक्ति है। और

तुलसी तो वाल्मीकिजी के मुख से बुलवा रहे हैं 'मानस' में, 'हंसिनि जिहा जासु।' जिसकी जबान, जिसकी वाणी हंसिनी बन जाय। तो हंसिनी जबानरूपी प्रवक्ता है रामकथा की। लेकिन फ़र्क इतना बाप, कि शिव जो वाणी बोले वो 'विश्वासी' वाणी थी। उस वाणी में अखंड विश्वास था, क्योंकि-

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यंति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ।।

तो, महादेव ने कैलास से पार्वती को कथा सुनाई वो वाणी ने सुनाई है। यद्यपि मौन की ताकत बहुत है। लेकिन वाणी को भी कमज़ोर न समझे। इधर हम चले आये प्रयाग में तो परम विवेकी याज्ञवल्क्य ने विनीत, अपनी विवेकी वाणी बोली। इधर चले जाये कागभुशुंडि के नीलगिरि पर्वत पर तो गरुड को आते ही जो खड़े हो जाते हैं कागभुशुंडि, उनका जो विनय है, विनीतपना है; मेरी समझ में वो विनीत वाणी बोली है। और तुलसीजी ने जब कथा का गायन किया तब वैरागी बानी बोली है। ये वाणी ही तो बोल रही है; मातृशक्ति ही तो बोल रही है।

तो, आप सब आये, व्यासपीठ को इतना आदर दिया। और मेरी खुशी बहुत है कि यहां के राष्ट्रध्वज में मंदिर का निशान है। और जो कन्ट्री, जो किंगडम बौद्धों को भी कुबूल करता है, इस्लाम को भी कुबूल करता है, इसाई को भी कुबूल करता है, हिन्दु तो है ही। ग्यारहवीं सदी; मैंने जब सुना, विश्व का सब से पुराना विष्णुमंदिर है। इसीलिए मैंने निर्णय किया कि इस कथा मैं 'मानस-विष्नु भगवान' पर बोलूंगा। इसके इर्द-गिर्द हम परिकम्मा करेंगे।

'मानस-बिष्नु भगवान', जिस सब्जेक्ट को अभी तक हमनें छूआ नहीं है। और इस भूमि से ज्यादा उपयुक्त भूमि कौन हो सकती है विष्णु के दर्शन के लिए? 'मानस' में बाइस बार करीब-करीब 'बिष्नु' शब्द का प्रयोग तुलसीदासजी ने किया है। हरि तो अनंत है, यस।

साहब, 'रामायण सत कोटि अपारा।' विश्वामित्र ने कहा, 'चरितं रघुनाथस्य सतकोटि प्रविस्तरम्।' जिस मूलक में जाओ, अपनी-अपनी रामकथा लिए हर मूलक है। कभी डान्स के रूप में, कभी म्युझिक के रूप में, कभी पपेट के रूप में, कभी कहानिओं के रूप में, कभी संपादन के रूप में। 'रामायण' पर विश्व में काम हो रहा है। शायद किसी ग्रंथ पर इतना होता हो! भगवान करे हो; लेकिन मुझे बड़ी खुशी है।

आदरणीय डेप्युटी प्राईम मिनिस्टर ने कहा, ये विष्णुलोक बताया, तो सब्जेक्ट को बड़ा बल मिला। यहां आया तब तक निर्णय नहीं था। कीर्ति से 'मानस' मांगा कि कौन चौपाईया लूं? दिमाग में नहीं उठा तो छोड़ दिया फ़िर आंखें बंद करके जो गुरुदेव ने कृपा कि वो सब्जेक्ट ले लेता हूं। तो इस कथा 'मानस-बिष्नु भगवान' होगी। तो, पहली पंक्ति जो ली है, 'बालकांड' में पार्वती के विचार है -

लेकिन कम से कम बाइस बार तो है ही। तो, मैं फिर एक बार प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। हमारे आदरणीय राजदूत बहुत प्यारा बोले। हिन्दुस्तानीओं को बोलना बहुत अच्छा आता है। जो प्रस्तुति थी, मुझे बहुत अच्छी लगी। मैं बहुत खुश हूं। मैं पहले ही दिन पूरे भारत की ओर से, पूरे भारत के आध्यात्मिक जगत की ओर से इस कम्बोडिया राष्ट्र को बहुत-बहुत बधाई ओर शुभकामना देता हूं। यहां की जनता के लिए मेरी व्यासपीठ से मैं हनुमानजी के चरणों में प्रार्थना करता हूं, बहुत प्रसन्न रहे, बहुत संपन्न रहे, ऐसी मेरी बहुत-बहुत बधाई। सब को मेरा प्रणाम। और आदरणीय पटनायकजी, मैं आप से कहना चाहूंगा कि जैसे यहां इन्टरनेशनल 'रामायण' कोन्फरन्स होती रहती है, वैसे तलगाजरडा में-महुआ में भी एक बार हुई तब कम्बोडिया से दो 'रामायण' के विद्वान आये थे। यहां के विद्वानों ने अपनी ओर से 'रामायण' के बारे में अपने विचार प्रस्तुत किये थे।

बिष्नु जो सुर हित नरतनु धारी ।
सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी ।।

'रामचरित मानस' के प्रथम सोपान 'बालकांड' में कुंभज ऋषि के आश्रम से रामकथा सुनकर शिव और सती कैलास लौट रहे हैं। दंडकारण्य से गुज़र रहे हैं, उसी समय राम की ये ललित नरलीला शिव और सती ने देखी, जिसमें जानकी का अपहरण हो चुका था और राम नरलीला करते हुए विरही और कामी की तरह सीता के वियोग में रो रहे थे। इस दृश्य को देखकर शिव तो पहचान गये कि ये तो परमात्मा की ललित नरलीला है, लेकिन दक्ष की कन्या होने के नाते, बुद्धिमान की बेटी होने के नाते, बौद्धिक होने के नाते सती संदेह करती है कि यदि विष्णु ने देवताओं के लिए मनुष्य शरीर लेकर ये लीला रची हो तो तो विष्णु सर्वज्ञ है, जैसे मेरे भगवन त्रिपुरारी प्रभु, जैसे शिव सर्वज्ञ, वैसे विष्णु भी सर्वज्ञ; तो उसको तो पता होना ही चाहिए कि मेरी पत्नी को कौन चुराकर ले गया है? अज्ञानी की तरह वो जानकी को खोजे? यहां से संदेह का जनम हुआ। दूसरी पंक्ति मैंने जो सहज उठी सो ले ली-

संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना ।
उपजहिं जासु अंस तें नाना ।।

मनु और शतरूपा के सामने भगवान जब प्रगट हुए रामरूप में, तब गोस्वामीजी निवेदन करते हैं कि जिसके अंश से नाना प्रकार के शिव, ब्रह्मा और विष्णु भगवान प्रगट होते हैं। शायद मेरी जानकारी के मुताबिक पूरे 'रामचरित मानस' में 'बिष्नु भगवान' शब्द एक ही बार यूझ हुआ है। भूल-चूक लेवी देवी!

उपजहिं जासु अंस तें नाना ।

पूर्व पंक्ति जहां सती सोच रही है, वहां विष्णु देवताओं के लिए अवतरित हुए, तो विष्णु के अवतार के रूप में राम की ओर संकेत है। और मनु और शतरूपा के यहां राम

प्रगट हुए तब कहा कि इस राम से कई विष्णु, कई ब्रह्मा, कई शंकर प्रगट होते हैं! बड़ा मुश्किल मामला हैं! और भारत में भी अपने-अपने आग्रहवाले महापुरुष, कोई कहते हैं, विष्णु राम का अंश है। विष्णुपरक लोक कहते हैं कि विष्णु ने राम का अवतार लिया। हमें तकरार में जाना ही नहीं है, ये तो आप जानते हैं। हम तो संवाद की बातें करने आये है, तकरार नहीं। क्योंकि तर्क है ये एक ऐसी तलवार है, ओशो रजनीश कहा करते थे कि तर्क एक ऐसी शमशेर है कि दूसरे के गर्दन को काट भी सकती है और दूसरों के गर्दन को बचा भी सकती है। यथामति गुरुकृपा से मैं आप से संवाद रचूंगा। और मेरे पास तो जो आये, संवादवाले ही आते हैं अक्सर। ये जो परमतत्त्व है वहां तर्क काम नहीं कर सकता। पाकिस्तान के मशहूर शायर मर्हूम फ़राज़साहब का शेर है, छोटी बहर की गज़ल है। फ़राज़ कहते हैं-

हम न किसी से बोलेंगे।
तन्हाई में रो लेंगे।

क्योंकि बोलने से कितना बिगड़ता है! तर्क-वितर्क करने से कितने संघर्ष पैदा होते हैं! चुप रहना बहुत बड़ी मार्मिक बात है। मौन कभी खाली नहीं होता। मौन समस्त प्रश्नों का जवाब देता है। बोल-बोल कर हम बिगाड़ देते हैं! तर्क-वितर्क करके हम एक-दूसरे को काटते-काटते-काटते नामशेष कर देते हैं! हाथ में कुछ नहीं आता। अंतिम शे'र है-

नींद तो क्या आये फ़राज़,
मौत आई तो सो लेंगे।

तो, तर्क से कुछ बनता नहीं। तो सती ने बौद्धिक तर्क उठाये कि वो परमात्मा विष्णु तो शिव के समान सर्वज्ञ है। वो तो सब जानते हैं सर्वज्ञ होने के नाते। यहां विष्णु के अवतार राम है। मनु के सामने राम के कई अंश के रूप में विष्णु आते हैं। तो प्रश्न जरा पेचीदा है। लेकिन हमें लड़ाई में नहीं जाना है। वो जो पंडित लोग करे उसको मुबारक! इससे थकावट होगी। लेकिन हम विष्णु भगवान का दर्शन नव दिन करेंगे 'मानस' के मारग से कि 'मानस' विष्णु की क्या छबि देता है। जहां-जहां 'विष्णु' शब्द आया है, उसको खोज-खोजके हम साथ में बातें करेंगे। तो, विचार की भूमिका में है सती। और भगवान राम रो रहे हैं तभी उसको ये विचार आया। और आप जानते हैं कि परिणाम क्या हुआ? आप सब जानते हैं, ये तो भूमिका है। पहले दिन भारत की व्यासपीठ का एक प्रेमपूर्ण आदेश रहा वक्ताओं को कि पहले दिन ग्रंथ परिचय, ग्रंथ माहात्म्य। मैं पहले से इस प्रवाही परंपरा का निर्वहण करता रहा।

'रामचरित मानस' के सात सोपान है। आदि कवि वाल्मीकि ने 'कांड' कहा। लेकिन अनादि कवि शिव ने 'मानस' की रचना की तो उसने 'कांड' नहीं कहा, 'सोपान' कहा। हम बोल लेते हैं, 'कांड' बड़ा प्रचलित शब्द है, आदि कवि ने दिया है तो आदत-सी हो गई है। लेकिन 'मानस' में सात 'सोपान' है।

यहां भी संस्कृत भाषा की बड़ी महिमा रही, कम्बोडिया में। मुझे बड़ा आनंद आ रहा है। शताब्दियां पहले यहां सभ्यता कैसे आई? उदारता कहीं भी पहुंच सकती है; संकीर्णता कहीं भी मार खा जायेगी। जिस सभ्यता में सेतुबंध का औदार्य है वो कहीं भी सेतु निर्माण कर लेगी। तुलसी ने भी 'रामचरित मानस' का मंगलाचरण तो संस्कृत में किया, सात मंत्रों में, आप जानते हैं। हमारे यहां संस्कृत में ग्रंथ लिखे गये। कुछ प्राकृत में लिखे गये, जैसे बुद्ध-महावीर आये उन्होंने प्राकृत में रचना की। श्लोक को तुलसीदासजी लोक में प्रस्थापित कर देते हैं। सामान्य जन तक श्लोक उतरा लोकभाषा में। ये नितान्त जरूरी था, वर्ना लोक परमतत्त्व को समझनें में देर कर देते। कबीर तो बिलकुल लोकबोली में बोले, बिलकुल साधुकड़ी भाषा में।

तो बाप, तुलसी ने मंत्रों में मंगलाचरण किया। ये 'मंगलाचरण' शब्द ही भारतीयों का बड़ा अद्‌भुत है! क्योंकि हम मंगल उच्चारण तो करते ही है, लेकिन हमारी ज्यादा निष्ठा मंगल आचरण में है। उच्चारण तो है ही। सुंदर संगत में किसी भी राग में ढ़ालकर हम श्लोक का गायन कर ले, लेकिन प्रश्न होता है मंगल आचरण का। इसीलिए मंगल उच्चारण को भारत की मनीषा ने मंगलाचरण कहा। मानवी का व्यवहार, मानवी का वर्तन मंगल हो। मेरी परिभाषा ये है कि रामकथा के वक्ता और श्रोता दोनों में ये तीन चीज़ होनी चाहिए। एक, सरल बानी। वक्ता की बोली सरल हो। श्रोता की रहन-सहन और श्रवण सरल हो। इसका मतलब ये नहीं, आप कोई ऐसे कपड़ें न पहने। लेकिन सरलता, सादगी और सरल व्यवहार। ध्यान देना, तीन प्रकार के जीव 'मानस' ने निश्चित किये हैं।

बिषयी साधक सिद्ध सयाने।

चौथा तो तलगाजरडा ने अंदर ड़ाला है, शुद्ध। ये चौथा जीव है शुद्ध।

विषयी का बैराग दो आने का होता है, दो कौड़ी का होता है! साधक का बैराग चार आने का होता है। वो जरा ज्यादा, वन फोर्थ तक पहुंचता है ये। सिद्ध का बैराग आठ आनी होता है। लेकिन शुद्ध का बैराग सोलह आनी होता है। तुलसी की ये बैराग बानी है, जो सरल वेश, सरल बोली और सरल व्यवहार एक दूसरे के साथ हमें सिखाती है। मेरी तो इतनी सालों की जो यात्रा है और आप के साथ मेरा वार्तालाप है इतनी सालों का; मैं देख रहा हूं कि लोगों की बोली में भी सरलता आने लगी है। लोगों के व्यवहार में सरलता मैं देख रहा हूं। लोगों की वेषभूषा में भी सरलता आई है।

तो बाप, सात श्लोक लिखे। वाणी की वंदना पहले की। मातृशक्ति की वंदना हमारे यहां कायम पहले रही है; और रहनी चाहिए। तो वाणी-विनायक की वंदना की। फिर भवानी-शंकर की वंदना की। फिर गुरुवंदना की शिव के रूप में। फिर सीतारामजी की वंदना की। हनुमानजी और वाल्मीकिजी की वंदना हुई। फिर ऐसे करते-करते तुलसी ने अपना जो शिवसंकल्प था वो घोषित किया कि-

स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति।

मेरे स्वान्तः सुख के लिए मैं इस शास्त्र को भाषा में उतार रहा हूं। फिर आप जानते हैं, सीधे लोकबोली में आ गये तुलसी। पांच सोरठें दिये। जगद्‌गुरु शंकर ने हम को कहा था कि सनातन धर्मावलंबीओ को, वेदावलंबीओं को पांच देवताओं का स्मरण रखना- गणेश, विष्णु, दुर्गा, शिव और सूर्य। तुलसी यद्यपि रामानुजीय परंपरा के है। लेकिन जगद्‌गुरु शंकराचार्य के शैव सिद्धांत को उसने पहले प्रस्थापित किया। गणेश की वंदना की। सूर्य का स्मरण किया। शिव का स्मरण किया। साथ में भवानी का स्मरण किया। और विष्णु भगवान का स्मरण किया। पांचों का स्मरण करने के बाद फिर गुरुवंदना से शास्त्र का आरंभ होता है।

मैं कई बार आप से बातें कर चुका हूं कि गुरुवंदना में, गुरुनिष्ठा में पांचों देव की वंदना समा जाती है। गुरु हमारा गणेश है। गुरु हमारी दुर्गा है। गुरु हमारा शिव है। गुरु हमारा नारायण है। गुरु हमारा सूर्य है। एक गुरु में सब समाहित होते हैं। जिसकी पक्की शरणागति हो उसके बारे में ये लागू होता है। इसमें व्यक्ति का प्रश्न नहीं, एक परमतत्त्व की ओर शरणागति की बात है। अब 'मानस' की शुरूआत चौपाईओं से हो रही है। जिसमें पहला प्रकरण गुरुवंदना का है, जिसको व्यासपीठ 'मानस गुरुगीता' कहती है।

बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।

गुरु की महिमा का गायन किया। गुरुचरण को कमल कहा। कमल असंग है। जिस बुद्धपुरुष असंग है ऐसे तत्त्व की वंदना की है। यहां गुरु से ज्यादा गुरुपद की महिमा गाई गई है। तुलसी ने कहा, गुरु की चरणरज से मेरी दृष्टि को पावन करके मैं अब रामकथा गाने जा रहा हूं। और दृष्टि किसी की गुरुकृपा से शुद्ध हो जाय। मेरे भाई-बहन, मेरा मानना है, बच्चा छोटा हो तो उसको शिक्षक की जरूरत है। बच्चा कुमार हो तो उसको कोई आचार्य की जरूरत है। कोई गुरु की जरूरत है। गुरु बंधन काटे, बंधन डाले ना। आप को परवश करे वो गुरु नहीं, वो तो पारधि है! वो तो शिकारी है! गुरु और शिष्य के बीच में कोई विक्रय नहीं होता। केवल, केवल, केवल विवेक और केवल, केवल, केवल दीपदीक्षा होती है। एक दीप दूसरे दीप को जलायें। इसीलिए बुद्धपुरुषों की महिमा हमारे यहां बहुत हुई है, की गई है, रहनी चाहिए। 'रामचरित मानस' स्वयं गुरु है। व्यासपीठ गुरु है। व्यास जगत के गुरु है, 'नमोस्तुते व्यास विशालबुद्धे' और जो व्यासपीठ के पीछे बैठा है-

जय जय जय हनुमान गोसाई ।
कृपा करहु गुरुदेव की नाई ।।

इन गुरुओं की मैं बातें कर रहा हूं। हर कथा सुनी जाय, न सुनी जाय; 'रामायण' का पाठ करो, न करो, कोई चिंता नहीं। लेकिन एक मानसिक संलग्नता ये आवश्यक है। बाकी तो, मैं बार-बार कहता रहता हूं, मैंने पहले भी कहा है, गुरु कमज़ोर हो सकता है; आदमी है, ईन्सान है। गुरुपद कभी कमजोर नहीं होता। इसीलिए भारत ने गुरुपद की वंदना की। उस पद को, इस स्थान को, इस पड़ाव को, इस अवस्था को, इस स्थिति को हमारा प्रणाम है। यही बात दीक्षित दनकौरीसाहब की गज़ल में है। आप सब अब तो जानते हैं-

या तो कुबूल कर मेरी कमज़ोरियों के साथ,
या छोड़ दे मुझे मेरी तनहाईयों के साथ।

लाज़िम नहीं कि हर कोई हो कामियाब ही,
जीना भी सीख लीजिये नाकामियों के साथ।

तो मेरे भाई-बहन, गुरुपद की महिमा यहां बहुत है। और गुरु पुन्य नहीं देता, प्रेम देता है। गुरु पुन्य नहीं देता, पवित्रता देता है। गुरु पुन्य नहीं देता, प्रसन्नता देता है। ये कथा भी क्या आप को पुन्य देगी? मैं कोई पुन्य का विक्रय करने निकला हूं कि आप कथा सुनो तो आप को पुन्य मिले? यहां कोई पुन्य की दुकान नहीं लगाई है मैंने! यद्यपि लोग धर्म के नाम पे पुन्य की दुकान लगाते हैं कि ये करो तो इतना पुन्य मिले, ये करो तो इतना मिले! एक युवक ने मुझे पूछा कि हमारे एक महात्मा थे वो मुझे कहते थे कि इतना पैसा चढ़ावा चढ़ाओ तो तुम्हें गौशाला का पुन्य मिले! गौशाला तेरी झोली में हो जाएगी साहब! और सामान्य गायों की गौशाला नहीं, कामदुर्गा गाय की ये (रामकथा) गौशाला है! पुन्य मिले और हमारी विशेष पवित्रता न बचे तो क्या मिला? इसीलिए भूल से भी मेरी कथा में तो पुन्य के लिए आना ही मत! मैं बिलकुल साफ़ कहता हूं! यहां कोई पुन्य-पुन्य की बात नहीं है। यहां हम नौ दिन 'मानस' के संग में बैठकर विशेष पवित्र होंगे, विशेष प्रसन्नता प्राप्त करेंगे, विशेष अस्तित्व का प्यार प्राप्त करेंगे। इससे अतिरिक्त चाहिए भी क्या?

तो, गोस्वामीजी ने गुरुमहिमा का गायन किया। दृष्टि गुरुचरणरज से पवित्र हुई तो सब वंदनीय दीसे। मैं बार-बार कहता हूं, बिलकुल छोटा-सा सूत्र कि दूसरी व्यक्ति निंदा करने योग्य हमें लगे तब तक समझना हमारी दृष्टि पवित्र नहीं हुई है। मैं फिर नरसिंह मेहता को याद करूं, उसने कहा-

सकल लोकमां सहुने वंदे, निंदा न करे केनी रे;
वाछ, काछ मन निश्चल राखे, धन धन जननी तेनी रे...

बुद्धपुरुष के रजमात्र अनुग्रह से जिसकी आंख पवित्र हो जाती है फिर सबको प्रणाम ही करने लगेगा। और तुलसी ने पूरा वंदना प्रकरण लिख दिया। सब से पहले पृथ्वी के देवताओं की वंदना की। असुरों की वंदना की, खलों की वंदना की, सब की वंदना की! क्योंकि निंदा के योग्य कोई दिखता ही नहीं।

राबिया से जब कहा गया कि इस धर्मग्रंथ से 'शैतान से नफ़रत करो', वो तूने हटा क्यों दिया? ये तो बड़ा भयंकर अपराध है!' बोली, जिसको आत्मसात् होता है उसको कोई शैतान दिखता ही नहीं। वो परम वंदनीय हो जाता है। इसीलिए मेरे गोस्वामीजी लिखते हैं-

सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

उसके बाद तुलसीजी ने माँ कौशल्या की वंदना की, दशरथजी की वंदना की। फिर संत भरत की वंदना की। यद्यपि ये वंदना भी है और पात्र परिचय भी है। लक्ष्मणजी की, शत्रुघ्न महाराज की वंदना की। पारिवारिक वंदना चल रही थी तुलसी के प्रथम वंदना प्रकरण में लेकिन बीच में उसने हनुमानजी की वंदना डाल दी। तुलसी लिखते हैं-

महाबीर बिनवउँ हनुमाना।
राम जासु जस आप बखाना।।

हनुमंत वंदना नितांत अनिवार्य, आवश्यक है कि करनी ही पड़े। तो, पहले दिन की कथा मैं सदैव हनुमंत वंदना तक लिए चलता हूं। हम सब हनुमंत की वंदना करें। हनुमंत तत्त्व कोई भी धर्म, कोई भी मज़हब, कोई भी पंथ, मारग, संप्रदाय जो नाम दो, कोई अपनी जिद्द के कारण न कुबूल करे तो कौन उसको समझायें? लेकिन हनुमंत तत्त्व सब के लिए नितांत आवश्यक है। हनुमानजी वायुपुत्र है, हवा है। और पवन चाहिए जीने के लिए, सांस चाहिए। 'हनुमान को नहीं मानता हूं', ऐसा कहने के लिए भी हनुमान की जरूरत पड़ेगी क्योंकि सांस तो लेनी पड़ेगी, तब तो हम बोल पाएंगे! तो, हनुमानजी हमारे सांस और हमारे विश्वास के प्रतीक है। हवा सब जगह है। मेरा हनुमान सब जगह है। पवन के रूप में, वायु के रूप में है। तुलसी के ग्रंथ 'विनयपत्रिका' से हनुमानजी का स्मरण हम गा लें-

मंगल-मूरति मारुत-नंदन।
सकल अमंगल मूल-निकंदन।।
पवनतनय संतन-हितकारी।
हृदय बिराजत अवध-बिहारी।।

तो, श्री हनुमानजी परमतत्त्व रूप में परम वंदनीय है। 'हनुमान चालीसा' में स्पष्ट लिखा हैं, 'जो सत बार पाठ कर कोई ।' कोई मीन्स कोई भी। बहन लोग न कर सके, ऐसी कोई बात नहीं। हनुमान के सामने कोई भेद नहीं। श्री हनुमानजी महाराज का आश्रय कीजिए। कोई बुद्धपुरुष जीवंत मिल जाये तो क्या कहना? लेकिन न हम परख पायें तो हनुमानजी को गुरु समझ लेना ताकि वो किसी न किसी रूप में हमारा मार्गदर्शन करता रहेगा, हमारा होंसला बढ़ाएगा, हमें बल देगा। ये हनुमंततत्त्व का आश्रय कोई भी कर सकता है।

गुरु पुन्य नहीं देता, प्रेम देता है। गुरु पुन्य नहीं देता, पवित्रता देता है। गुरु पुन्य नहीं देता, प्रसन्नता देता है। ये कथा भी क्या आप को पुन्य देगी? मैं कोई पुन्य का विक्रय करने निकला हूं कि आप कथा सुनो तो आप को पुन्य मिले? यहां कोई पुन्य की दुकान नहीं लगाई है मैंने! यद्यपि लोग धर्म के नाम पे पुन्य की दुकान लगाते हैं कि ये करो तो इतना पुन्य मिले, ये करो तो इतना मिले! यहां कोई पुन्य-पुन्य की बात नहीं है। यहां हम नौ दिन 'मानस' के संग में बैठकर विशेष पवित्र होंगे, विशेष प्रसन्नता प्राप्त करेंगे, विशेष अस्तित्व का प्यार प्राप्त करेंगे।

मानस-विष्णु भगवान

॥ २ ॥

मुझे परमात्मा 'मानस'की चौपाईओं में दिखता है

'मानस-बिष्नु भगवान', जो इस कथा का केन्द्रीय विचार है। भगवान विष्णु, परमतत्त्व की हमारे यहां त्रिशाखा मानी गई। एक सर्जक शाखा, एक पालक शाखा और एक संहारक शाखा। और ये तीन शाखा की मुख्य ऊर्जा उसको भारतीय मनीषा ने नाम दिया ब्रह्मा, विष्णु, महेश। ये विष्णुलोक है कम्बोडिया, इतना पुराना भगवान विष्णु का विशाल मंदिर। इसीलिए इस भूमि पर विष्णु का स्मरण करने को स्वाभाविक मन हुआ। पहले भगवान विष्णु के स्थूल विग्रह का थोड़ा चिंतन करें। कल वाली बात मैं फिर से रखूं कि राम विष्णु के अवतार है कि विष्णु राम के अंश से प्रगट हुए है, ये विवाद नहीं लेकिन विद्वानों का अपना-अपना आग्रह है, छोड़ो! बाप, भगवान विष्णु के बारे में कई नामोल्लेख 'मानस' में मिलेंगे आप को। एक बिष्नु, बिष्नु है। उसको तुलसी ने 'रमापति' भी कहा है। उसको 'रमारमनं' भी कहा है। वो ही विष्णु को गोस्वामीजी की लेखनी ने 'श्रीपति' भी कहा है। वो ही विष्णु को तुलसी ने भी कहा, हम भी कहते हैं, 'हरि।' 'हर' मानी शंकर। वो ही भगवान विष्णु को एक अर्थ में 'नारायण' भी कहा है। वो लक्ष्मीपति भी है। उसको 'भृगुपादचिह्न' भी कहा है। भृगु ने सीने में लात मारी थी इसीलिए विष्णु का एक नाम है 'भृगुपादचिह्न।' बहुत नाम है।

ये तो 'मानस' से कुछ मैं कहूं, बाकी तो 'विष्णुसहस्रनाम' पर विनोबाजी ने भी काम किया; सांई मकरंद ने भी काम किया। 'विष्णुसहस्रनाम' की बड़ी महिमा है। तो, विष्णु को आम लोगों ने कई रूपों में देखा है। उसकी हमने मूर्ति बनाई है। यद्यपि वेद तो कहता है, 'तत्र न तस्य प्रतिमा अस्ति।' ये वेदवाक्य है। वेद ने फ़रमान किया कि उसकी कोई मूर्ति नहीं है। नाम को महत्त्व देता है वेद, बाकी मूर्ति को महत्त्व नहीं देता। विनोबाजी का मानना है कि जब मूर्ति का दर्शन करो तब चाहिए मूर्ति के पीछे एक अमूर्त है उसको देखें, एक अमूर्त भाव को देखें। विनोबाजी स्वयं मूर्ति के प्रति बहुत भाव रखते थे। मूर्तिपूजा बुरी चीज़ नहीं है। लेकिन वहां केवल रुक जाना साधक की गति का एक अवरोध है। इसीलिए विष्णु की मूर्ति हमने बनवाई, एक स्थूल रूप उसको दिया तब उसका थोड़ा आध्यात्मिक दर्शन करने को जी करता है। 'मानस' में भी लिखा है, आप भी जानते हैं, विष्णु चतुर्भुज है; ब्रह्मा चतुर्मुख है।

बिष्नु चारि भुज बिधि मुख चारी ।
बिकट बेष मुख पंच पुरारी ।।

गोस्वामीजी की पंक्ति है, विष्णु को चार हाथ; ब्रह्मा को चार मुख। कई अर्थों में हमने उसका दर्शन किया। एक तो इन मुखों से चार वेद निकलता है। परमतत्त्व के तो सांस-नि:श्वास से वेद का जनम हुआ है। लेकिन किसीके मुख से जब पहली बार निकला तो कहते हैं, ब्रह्मा के मुख से निकला है; जो हो। तो चार मुख चार वेदों के प्रतीक माने गये। यहां केन्द्र में विष्णु है। भगवान विष्णु की चार भुजा है। और हमारी आस्था ने विष्णु के चार हाथ में चार वस्तु पकड़वा दी

है- शंख, चक्र, गदा, पद्म। दशावतार विष्णु के माने गये हैं। यहां मैं बोलूंगा बिलकुल आग्रहमुक्त चित्त से। आप सुनियेगा भी आग्रहमुक्त चित्त से। तो कुछ हम विशेष लाभान्वित हो सकते हैं, यदि रस लेना है तो। वेदों ने इसी बातों को सोमरस कहा है कि आप किसी के वचनामृत को कानों के होठों से पीयें। 'सोम' का एक अर्थ वेद में मुझे मिला 'प्रेम'; 'सोम' मानी 'प्रेम।' और इसीलिए नरसिंह मेहता ने कहा -

प्रेमरस पाने तुं मोरना पिच्छधर।

'सोमरस' मानी 'प्रेमरस।' 'सोम' का अर्थ चंद्र है, 'सोम' का अर्थ परमात्मा भी है; 'सोम' का अर्थ 'सोमवल्ली' नामक एक वनस्पति का रस भी है, जो यज्ञप्रक्रिया में ऋषिमुनि उपयोग करते थे। छोड़ो; मुझे तो बहुत निकट पड़ता है, 'सोमरस' मानी 'प्रेमरस।'

आज कुछ प्रश्न भी थे। ''बापू, परमात्मा के दर्शन मंदिर में होते हैं? तीर्थ में होते हैं? जप में होते हैं? तप में होते हैं? पूजा-पाठ में होते हैं? ध्यान में होते हैं? समाधि में होते हैं? सत्संग में होते हैं?'' ये तो सब का अपना-अपना क्षेत्र है। लेकिन मुझे पूछा है तो मैं अपना जवाब दूं, अपना परिवार समझकर। मुझे परमात्मा का दर्शन मंदिर में नहीं हो रहा है। होना चाहिए, लेकिन मेरी कमज़ोरी रही होगी। वहां मूर्ति दिखती है, अमूर्त नहीं पाया गया। शृंगार दिखते हैं, अच्छा भी लगता है, प्यारा भी लगता है। जाता हूं मंदिर। जहां मंदिर न हो वहां मंदिर हो, ऐसा थोड़ा प्रेमाग्रह भी होता है, अधिक नहीं। अतिरेक नहीं होना चाहिए। सात्त्विक होना चाहिए। शे'र सुनिए-

उसको कहां था पाना, उसको कहां पाया है?
जिसको पाना था जिंदगी में, उसको शायरी में पाया है।

शायर तो कहता है, मुझे तो परमात्मा जिंदगी में चाहिए था कि हृदय में दिखें लेकिन मुझे जब दिखा तो शायरी में दिखाई दिया! तो मेरा जवाब ये है, मुझे परमात्मा 'मानस' की चौपाईओं में दिखता है। तुलसी की ये शायरी है, ये शब्दब्रह्म है, तुलसी की ये ऋचाएं है। मंत्रात्मक सूत्र आप जानते हैं-

हरि ब्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना।।

समरूप, समानरूप, सब जगह वो व्याप्त है, ऐसे परमात्मा को मंदिर में भी पाया जाता है, ध्यान में भी पाया जाता है, चिंतन में भी पाया जाता है, कोई तीर्थ में भी पाया जाता है। तो मेरे भाई-बहन, उस अमूर्त को किस रूप में देखें? पहले मूर्ति के माध्यम से उसकी ओर जाना होगा।

तो बाप, विष्णु भगवान की चार भुजाएं हैं। जिसमें एक-एक वस्तु हमनें पकड़वाई है - शंख, चक्र, गदा और पद्म। अपना-अपना भाव भी कुछ है। शंख का मतलब है वाणी। आप जानते होंगे, संस्कृत वाङ्मय में और तुलसी ने भी कहा, 'कुंद इंदु दर गौर सरीरा।' कंठ को, ग्रीवा को शंख की उपमा दी जाती है। और आवाज़ यानी वाणी-शबद निकलते हैं कंठ से। भगवान विष्णु के हाथ में जो शंख है ये वाणी का प्रतीक है। किसी व्यक्ति में हरिदर्शन करना है, होना चाहिए। यदि व्यक्ति में न कर पायेंगे तो शायद मंदिर में चुक जायेंगे। तो ये परख भी है कि नर होते नारायणरूप जगता है। यद्यपि स्थूल रूप में उसके चार हाथ नहीं है। श्रद्धाजगत कहता है कि जमणेरी शंख ज्यादा अच्छा माना जाता है। मैं तो इसमें नहीं मानता। मैं तो इतना ही अर्थ करूं, दहिन वाणी अच्छी है, वाम वाणी अच्छी नहीं है। कौन है वो नर जिसको हम नारायण के रूप में दिखते हैं? हमारी वाणी एक तो शंख की तरह धवल हो, उज्वल हो। उज्वल का मतलब, वाणी में कोई रंग नहीं होता लीला, पीला, लाल। हां, रंगीन बोली होती है, कई लोगों की, जो रंगीन बातें करते है! खेर! यहां उज्वल और धवल का प्रतीक है निर्दोष बानी, पवित्र बानी, सौम्य बानी। दहिन, सब का सुल्टा करनेवाली बानी, उल्टा करे ऐसी बानी नहीं। भावनगर का एक शायर हुआ नाझिर देखैया, उसका एक शे'र है-

एवां न वेण काढो, कोईना दिलने ठेस वागे।
वाणी उपर बधो छे आधार मानवीनो।

मीठी बानी, मधुर बानी। तो, किस नर को हम नारायण समझें? तो एक लक्षण है, संकेत है, जिसकी वाणी सुल्टी हो, वाम न हो। उज्वल हो, पवित्र हो अथवा तो ओर ज्यादा अच्छा अर्थ है, निष्कपट हो। हमारी वाणी के पीछे नेटवर्क होता है, सुगठित प्रयोजन होता है! वाणी गंग की धारा की तरह हो। इस नर को नारायण समझना, इस इन्सान को भगवान समझना, इस विग्रहधारी मानव को विष्णु समझना, जिसकी वाणी निष्कपट हो। मेरी समझ में शंख वाणी का प्रतीक है एक अर्थ में।

मेरे युवान भाई-बहन, मैं आप से कुछ अपेक्षा नहीं रखता हूं, लेकिन रामकथा सुनते-सुनते हमारी वाणी ऐसी दीक्षित हो, या तो मौन रहे, बस। और मौन बहुत सभर होता है, खाली होता ही नहीं। ये सभी जवाबों से पूर्ण होता है मौन। इसीलिए दक्षिणामूर्ति का महादेव, दक्षिणामूर्ति का गुरु तो मौन बैठा है और शिष्यों के संशय छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। मौन की बड़ी महिमा है। बड़ी ताकत है मौन की। हम बोल-बोल करके बहुत बिगाड़ देते हैं! निष्कपट होने के दो उपाय मेरी समझ में है। आदमी थोड़ा मौन रखना सीखे, तो धीरे-धीरे कपट कम होगा। शुरू-शुरू में तो मौन में ही कपट की योजना होती है! ये भी खतरा है। कई लोग कहते हैं, 'बापू, हम मौन रहते हैं तो बहुत विचार आते हैं!' इसका मतलब ये है कि भेंस जब पानी में अपने को डालती है तो जो मेढ़क है, कूद-कूद कर निकल जाते हैं। आदमी में मौन आता है, तो विचार भागने की कोशिश करते हैं। ये विचार ज्यादा आये तो इसका मतलब ड़रना मत। और दूसरा है, भीतर से पवित्र होने का भक्ति मारग का, प्रेम मारग का साधन साधक के आंसू है। आदमी की आंख में उनको याद करते-करते जितने आंसू आ जाये, आदमी ओर पवित्र हो जाएगा। अहमद फ़राज़साहब का एक शे'र है, छोटी बहर की एक गज़ल है-

जब दिल खोल के रोये होंगे।
लोग आराम से सोये होंगे।

नींद क्यों न आयें? क्योंकि हम बहुत कठोर दिल है, संगदिल है! बच्चा बहुत रोता है तो बाद में बहुत सोता है। कोई किसी की याद में रो-रो कर थक जाएगा, फिर सो जाएगा। बिलकुल सीधे-सादे शब्द है लेकिन जीवन की घटना को प्रस्तुत करता है फ़राज़। दूसरा, फ़राज़साहब के दिल में क्या अर्थ है ख़बर नहीं लेकिन जमाना देखकर ये भी लगता है कि कोई बहुत रोता है तो दूसरे को आनंद भी आता है कि सो जाओ, अच्छा हुआ! अब रो रहा है, सिर पटक रहा है! इर्ष्या से यही भी तो होता है!

मेरे पास दो-तीन चिठ्ठियां ऐसी है कि 'बापू, इतनी कथा सुनी, जेलसी नहीं जा रही है!' कुछ ओर सुनो! बिलकुल खाली चित्त से सुनो। और ये पीड़ा भी तो कम नहीं है कि हमारी इर्ष्या नहीं जा रही है, निंदा नहीं जा रही है! आप देखिये, आदमी निंदा करेगा तो सोयेगा नहीं। निंदा करते-करते कोई सो गया, अभी तक मैंने कोई देखा नहीं। रामकथा सुनते सो जायेगा। हरिस्मरण करते सो जाएगा। ऐसा भी होता है। साहित्य में नव रस है, ऐसे निंदा का भी एक रस है! जो निंदा करते हैं उसको अनिद्रा होती है। ये दंड है निंदा का! आगे बड़ा प्यारा शे'र सुनिये-

वो सफीने जिन्हें तूफ़ान नहीं मिले,
खुद नाखुदाओं ने डुबोये होंगे।

ये नौका जिसको कोई तूफ़ान का सामना नहीं करना पड़ा। समंदर शांत था। नौका चलानेवालों ने ही डुबोये होंगे! तो बाप, दिल की पवित्रता के लिए आंसू ही तो है। कलेजा किस केमिकल से धोया जाय? इसीलिए तुलसी कहते हैं-

मम गुन गावत पुलक सरीरा ।
गदगद गिरा नयन बह नीरा ।।

और कबीर का बहुत प्यारा बचन है कि पंडित रो नहीं पाता, प्रेमी रोता है। और बिलकुल सही है। तो, निष्कपट मन-वाणी को करने के लिए या तो मौन, या तो आंसू। जो उपाय अच्छा लगे।

दूसरा, चक्र। चक्र गति का प्रतीक है। जो आलसी नहीं है, प्रमादी नहीं है। जो आदमी निरंतर गतिशील है, रोज नया है। प्रत्येक व्यक्ति निरंतर गति करे। जैसे एक ही नदी में दो बार नहाया नहीं जाता। चक्र परिवर्तित जीवन का प्रतीक है। और गति और प्रगति अपने हाथ में होनी चाहिए, उधार नहीं। चक्र ऊंगली में है। वो मेरी प्रगति कर दे, वो मेरी गति कर दे, वो मुझे सपोर्ट करे, ठीक है, लो सहयोग। लेकिन जिसके पास अपना खुद का हाथ जगन्नाथ नहीं है, वो क्या खाक् गति करेगा? आदमी स्वयं चले। जिसको बुद्ध कहते हैं, 'अप्प दीपो भव।'

तीसरा है गदा और चौथा पद्म। गदा कठोरता का प्रतीक है, पद्म कोमलता का प्रतीक है। गदा एक पकड़ का प्रतीक है, कमल असंगता का प्रतीक है। पकड़ना पड़ेगा गदा को। कमल बिलकुल सुकोमल है। कुसुम से भी कोमल और वज्र से भी कठोर जो परमतत्त्व की हमने परिकल्पना की है। कोई ऐसा बुद्धपुरुष मिल जाय कि आप को लगे कि इसके दिल के समान कोई ऋजु दिल नहीं है और जब उसको कोई गाठ कटनी हैं तो कभी न कभी वो थोड़ा आक्रमक मूड़ में दिखाई दे तो समझना वो गदा-पद्म लिए हुए बैठा है। यद्यपि भगवान विष्णु के युद्ध भी दिखे गये पुराणों में। वो लड़ते भी है, गदा का इस्तेमाल करते हैं। और मैं तो शस्त्र विरोधी आदमी हूं, आप जानते हैं। क्योंकि शस्त्र का उपयोग न करो, पड़े रहेंगे तो भी कभी न कभी हाथ में लेने की इच्छा होगी। बोलपेन हाथ में होगी तो कुछ न कुछ लकीरें खिंचने की आदत हो जाएगी! खुद की साईन करता रहेगा! ये सब के हाथ में सेलफोन है, तो कोई काम न हो तो भी उपर जाता है फ़िर नीचे आता है! कहां जाना है उसको, मेरी समझ में नहीं आता है! इस विज्ञान की मैं आलोचना नहीं करता हूं लेकिन हाथ में है तो कुछ न कुछ आदमी करता रहता है! हाथ में माला है तो जप क्यों नहीं करते हैं? यद्यपि कहा है, 'जपात्सिद्धिः।' सिद्धि में मेरी रुचि नहीं। जप करो, शुद्धि ओर होगी। और एक अवस्था होती है साधक की, तब उसकी जबान नहीं बोलती, उसके जप बोलने लगते हैं। कितने प्रकार के बल है इन्सान में, इनमें एक बहुत बड़ा है ये आदमी में जपबल। यद्यपि 'मानस' में तपबल की भी बहुत महिमा है। कभी बोलूंगा उस पर।

संसार के व्यवहार जगत में एक बल है, धनबल। वैचारिक जगत का एक बल है, विद्याबल, ज्ञानबल। प्रेमीओं का एक बल है, प्रेमबल। पद-प्रतिष्ठा का बल, राजबल, जिसको कहते हैं ग्रंथों में। और ये कलियुग में और बल, ठीक है लेकिन जपबल, हरिनाम। 'जप' शब्द तो मैं यूझ करता हूं। जप में भी नियम लागू होते हैं, पुकार में कोई नियम नहीं। जब मौज आये पुकारा गया। और बहुत जिम्मेवारी के साथ कहूं, जप करना तो 'राम' नाम का करना और कीर्तन करना तो 'कृष्ण' नाम का करना। और ध्यान करो तो शिव का। और परमात्मा के नाम के संकीर्तन की महिमा ऐसी है बाप, कि जो करे वो तो धन्य होता ही है। लेकिन करे ना और सुने वो भी धन्य हो जाता है। सुनने की भी बड़ी महिमा है। परिवार में कोई हरिनाम लेता है तो कोना-कोना उजागर हो जाता है। एक दीप्ति बन जाती है घर में।

तो बाप, गदा और पद्म कठोरता और कोमलता का प्रतीक है। दो हाथ में ये है। पद्मवाला हाथ वरद है, आशीर्वाद है। गदावाला हाथ अभयद है। ये हाथ में गदा हो न हो, फ़िर भी मैं कहूं कि मैं उस पक्ष में नहीं हूं। हनुमानजी से भी गदा मैंने ले ली। सितार पकड़वा दिया कि मौज आये, बजाना।

तो भगवान विष्णु के हाथ में चार चीज़ें हमारी मनीषा ने जो पकड़वाई है, बड़ी सांकेतिक है। जो हमें अभय दे। जिसकी वाणी हमारे लिए दहिन हो, उज्वल हो, मधुर हो। और जो आदमी अपनी गति-प्रगति का स्वयं जिम्मेवार हो, ऐसा कोई आदमी मिल जाये तो समझना, मुझे रास्ते में नारायण मिल गया। मुझे मंदिर में जाना नहीं पड़ा! मुझे मारग में कोई मिल गया है ये विष्णुरूप है। और हम सब एक श्लोक बहुत जानते हैं। वोही है नारायणपना। वोही है विष्णुपना।

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे बिष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ।।

'शान्ताकारं'; जिसका आकार, जिसका विचार, जिसका हरेक उच्चार, जो कहो, शांत है। किसी भी परिस्थिति में जिसकी मुखमुद्रा न बदले। शांत मुखमुद्रा रहे, उसको नारायण समझना। चलता-फिरता विष्णु है, उसके लिए वैकुंठ में जाने की जरूरत नहीं है। हो सकता है, वैकुंठ हमारे पडोश में भी हो! हो सकता है, वैकुंठ हमारे घर में भी हो! लेकिन शास्त्रकार शब्द बड़ा प्यारा जोड़ता है, 'भुजगशयनं।' सांप के बिछाने पर सोकर कोई शांत रह सकता है? अरे, बेड़ पर सांप बैठा हो तो भी कोई कमरे में दाख़िल नहीं हो पाता! स्वाभाविक है, अशांत हो जायेगा। और विष्णु भगवान शांत है सांप के बिछाने पर! और शांति की कसौटी तो वही है। अच्छी शैया पर लेटे

मौन बहुत सभर होता है, खाली होता ही नहीं। सभी जवाबों से पूर्ण होता है मौन। इसीलिए दक्षिणामूर्ति का महादेव, दक्षिणामूर्ति का गुरु तो मौन बैठा है और शिष्यों के संशय छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। मौन की बड़ी महिमा है। बड़ी ताकत है मौन की। हम बोल-बोल करके बहुत बिगाड़ देते हैं! आदमी थोड़ा मौन रखना सीखे, तो धीरे-धीरे कपट कम होगा। शुरू-शुरू में तो मौन में ही कपट की योजना होती है! ये भी खतरा है! कई लोग कहते हैं, 'बापू, हम मौन रहते हैं तो बहुत विचार आते हैं!' इसका मतलब ये है कि भेंस जब पानी में अपने को डालती है तो जो मेढ़क है, कूद-कूद कर निकल जाते हैं। आदमी में मौन आता है, तो विचार भागने की कोशिश करते हैं।

और शांत रहे, बात ओर है। सांप की शैया पर शांत रहता है वो तो विष्णु ही है। चारों ओर सर्पदंश होते हो! चारों ओर निंदा होती हो! इर्षा होती हो! अपवाद होते हो! ओर फ़ना फैलाकर सांप डंसने को तैयार हो ऐसे समय में भी जो शांत रह सकता है वो नारायण है। 'पद्मनाभं'; जिसकी नाभि में पद्म है। जिसका नाभितत्त्व असंग है, मूलतत्त्व असंग है। नाभि मानी मूल। हाथ किसी को छू जाये तो पाप नहीं है, भीतरी मानसिकता छूने की न हो। असंगता ही आदमी को शयन करा सकती है; आसक्ति आदमी को सोने नहीं देती।

आप 'रामचरित मानस' का 'उत्तरकांड' पढ़िये जहां सात प्रश्न गरुड ने पूछे हैं कागभुसुंडि को, इसमें सातवां प्रश्न 'मानस रोग।' काम, क्रोध, लोभ ये सब रोग की गिनती है। और सब की औषधि भी बताई है, लेकिन इन रोगों में 'मोह' की गणना नहीं है। तुलसी कहते हैं, मोह तो मूल है।

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला ।

मोह का अर्थ क्या है, पता है? एक अर्थ तो शास्त्र में मिलता है मोह का अज्ञान। मोह मानी अज्ञान। लेकिन ये पूर्ण सत्य नहीं दीसता। जहां तक मैं कोशिश करूं ये पूरा सत्य नहीं है। हम जानते हैं कि इसका परिणाम बुरा है, फिर भी जानते हुए भी वोही कर्म बार-बार करें उसको कहते हैं मोह। जानबुझकर हम जो किये जा रहे हैं! मोह मूल है। याद रखना मेरे श्रावक भाई-बहन, मोह किसी भी चीज़ से पैदा नहीं होता, मोह अपने आप प्रगट होता है। ये सूत्रात्मक सत्य है। मोह को किसने मिटाया है? मोह मिटेगा भगवत्कथा से। मेरे कहने का मतलब ये है मेरे भाई-बहन कि मोह में जानते हुए हम बार-बार भूल करते हैं। जानते हैं कि निंदा खराब है, फिर भी निंदा करते हैं! जानते हैं कि किसको छलना अच्छा नहीं लेकिन मौका आते ही छलना कर लेते हैं!

'विश्वाधारं'; जो विश्व का धारक है वो विष्णु है। विश्व का धारक तो कौन? जो परमतत्त्व है वो। लेकिन परिवार का मुखिया परिवार को सुचारु रूप से धारण करे तो हमारे लिए वो विष्णु है। शांत रहता है, सब को संभालता है, हमारा वो विष्णु है। और कौन विष्णु? 'गगनसदृशं'; विष्णु का एक अर्थ होता है व्यापकता, विशालता, असीमता; ये विष्णु का पर्याय है। आकाश की तरह जो विस्तरित है। 'मेघवर्णं', मानी बरसनेवाला है। वो सांवरा बरसता है, हम को धन्य कर देता है, वो विष्णु है। 'शुभाङ्गम्'; जिसके सभी अंग मंगल है। 'लक्ष्मीकान्तं'; लक्ष्मी जिसका पैर दबा रही है और शांत रहना बड़ा मुश्किल है! लेकिन मुझे यहां यही अर्थ अभिप्रेत है कि विष्णु लक्ष्मी का गुलाम नहीं है। संपदा हो तो उसके मालिक रहो, गुलाम मत बनो। हम लोग गुलाम है, किंकर है! ये कोई उपदेश ओर डांट-फटकार नहीं, हम सब की यही दशा है। विष्णु है लक्ष्मी का मालिक। 'कमलनयनं'; दृष्टि भी असंग है, प्रेमपूर्ण है। लाल रक्त के दोरे लगे है। 'योगिभिर्ध्यानगम्यं'; योगीओं के लिए भी ये ध्यान जरा मुश्किल है क्योंकि भुजंग की शैया पर सोना, लक्ष्मी पैर दबा रही है, ये जरा मुश्किल पड़ रहा है। योगी का ध्यान विचलित होता है, लेकिन उनके आकार में कभी अशांति नहीं आई ऐसा विष्णु का रूप है। संसार के भय को हरनेवाले ऐसे विष्णु, जो सर्व लोकनाथ है ऐसे विष्णु की वंदना की।

थोड़ा कथा का दौर मैं आगे बढ़ा लूं। कल श्री हनुमानजी महाराज की वंदना हम सब ने 'मानस' के क्रम अनुसार की। इसके बाद सीतारामजी की वंदना तुलसीजी ने की। उसके बाद नव दोहे में प्रभु के नाम की बृहद् महिमा और उसकी वंदना की। प्रभु के नाम की महिमा गोस्वामीजी ने बहुत गाई है।

'रामचरित मानस' में चार प्रकार की साधना है। लीलासाधना, नामसाधना, रूपसाधना और धामसाधना। कई लोग धामसाधना करते हैं आज भी कि अयोध्या में जाकर निवास करे। कोई काशी में

धामसाधना करते हैं, कोई बद्रिनाथ में, कोई बृंदावन में। उसको बहुधा धामसाधना कहते हैं। लीलासाधना का अर्थ है भगवान की कथाओं में रहना। कथा गाना, सुनना, स्वाध्याय करना, प्रभु के विचित्र-विचित्र कथाप्रसंगों को आत्मसात् करने की कोशिश, वो है लीलासाधना। तीसरी साधना का नाम है रूपसाधना। कई लोग रूपसाधक होते हैं। बस, उसको ओर कुछ नहीं करना, उनके नेत्रों को बस देखना है उसको। प्रभु के रूप की साधना। तो यहां नामसाधना का विस्तारपूर्वक वर्णन तुलसी ने रख लिया। यत्र-तत्र तुलसीजी भी नामसाधना करते रहे।

कोई भी नाम लो, मेरा कोई आग्रह नहीं लेकिन जो मूल बात है, वो तो मैं ज्यादा खोल कर अब कहने लगा हूं कि तत्त्वत: तो राम महामंत्र है। हां, ये तो बात आप जब भी माने, माननी पड़ेगी। न मानो तो मुझे बदल नहीं सकोगे! न मानो तो ये आप की मौज है। लेकिन मैंने जानकर कहा है, 'रामनाम' महामंत्र है, महामंत्र है, महामंत्र है। लगता है बिलकुल सरल। और जो सरल होता है वो बहुत गहन भी होता है। उसका ताग पाना मुश्किल होता है। तो, रामनाम की विशद चर्चा की है। उसके बाद तुलसीदासजी कथा का एक इतिहास बताते हैं।

'मानस' को मानसरोवर की उपमा दी गई। चार घाट बनायें। ज्ञानघाट मानी कैलासी घाट, जहां शिव पार्वती को सुनायें। दूसरा घाट कर्म का, जहां याज्ञवल्क्य भरद्वाजजी को सुनायें। तीसरा साधना का या तो उपासना का घाट है जो भुशुंडि का घाट है, जो गरुड को सुनाते हैं। और चौथा घाट प्रपत्ति का, शरणागति का घाट है, जहां तुलसी अपने मन को और संतों को कथा सुनाते हैं। तो, तीरथराज प्रयाग में भगवान याज्ञवल्क्य का चरण पकड़कर भरद्वाज ने जिज्ञासा की है कि 'महाराज, आप हमें रामकथा सुनाओ, रामतत्त्व क्या है?' और उसके जवाब में याज्ञवल्क्यजी भगवान शिव का चरित्र सुनाने लगे। शिव एक बार कुंभज ऋषि के आश्रम में सती को लेकर कथा सुनने जाते हैं। कुंभज ऋषि ने स्वागत किया, पूजा की। शिव ने तो समझ लिया कि महात्मा कितने उदार है कि वक्ता है, लेकिन मेरी उसने पूजा की! सती ने गलत अर्थ कर दिया कि ये क्या कथा सुनायेगा जो हमारे पैर में पड़ रहा है! कोई पैर छूए तो इसमें सामनेवाले की उदारता को देखना, अपनी लायकात मत देखना। शिव ने रस प्राप्त करते हुए कथा सुनी, सती केवल बैठी रही! मुनि से बिदा मांगकर शिव और सती निकलते हैं। दंडकारण्य से गुज़रते हैं और वहां-

बिष्नु जो सुर हित नरतनु धारी ।
सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी ।।

भगवान राम के रूप में लीला चल रही थी। 'हे सच्चिदानंद, हे जगपावन', कहकर शिव ने प्रणाम किया लेकिन सती को संदेह हो गया कि महादेव इसको प्रणाम करते हैं? क्या ये ब्रह्म है? सती दक्ष की बेटी है, उसमें बुद्धिप्रधानता है। शिव हार्दिक है, सती बौद्धिक है। शिवजी ने बहुत प्रकार से सती को समझाया कि ये ब्रह्म है, लीला कर रहे हैं। सती को उपदेश नहीं लगा। बौद्धिक आदमी विश्वास को रखता नहीं साथ में। शंकर तो विश्वास है। और सती अभी श्रद्धा नहीं है। वो तो पार्वती बनेगी तब श्रद्धा में परिवर्तित होगी। एक ही चेतना के दो आयाम है। चेतना जब बहिर्मुख होती है तो बुद्धि है, अंतर्मुख होती है तो श्रद्धा है। सती सीता का रूप लेकर जाती है और पकड़ी गई! शिव के पास लौटती हैं। अंतर्यामी शिव जान गये, सती झूठ बोली है। और भगवान शंकर ने राम की प्रेरणा से संकल्प किया। आसन लगाकर शिवजी स्वरूप अनुसंधान करते हैं और उनको अखंड समाधि लग जाती है। शिव समाधि में, सती उपाधि में! सत्तासी हजार साल बीत गये, उसके बाद शिव जागे। सती सन्मुख होती है। शिवजी रसप्रद कथा सुनाने लगे। उसमें दक्ष के यज्ञ की कथा आई, जिसकी चर्चा हम कल करेंगे।

मानस-विष्णु भगवान

॥ ३ ॥

विचार बहुत जरूरी है लेकिन विचार की शून्यता इस से भी ज्यादा जरूरी है

'मानस-विष्णु भगवान', पार्वती के मन की एक सोच कि ये राम, जिसका मैं दर्शन कर रही हूं, सीता के वियोग में रो रहे हैं, क्या विष्णु ने मनुष्यरूप धारण किया है? और यदि किया है तो मेरे प्रभु की तरह विष्णु भी तो सर्वज्ञ है, उसको पता होना चाहिए कि उसकी जानकी को कौन ले गया? ये अज्ञानी की तरह ऐसे खोजते नहीं! हां, ये प्रश्न प्रगट हुआ सती के मन में। और यहां मनु और शतरूपा के सन्मुख राम प्रगट हुए और गोस्वामीजी निवेदन कर देते हैं कि वो राम प्रगट हुए जिससे अनेक शिव, ब्रह्मा, विष्णु, उनके अंशमात्र से प्रगट होते हैं। तो ये जो बिलग-बिलग बात है, उसके विवाद में न जाते हुए तत्त्वत: सब एक है। हम संवाद में बातें करें।

मेरे पास बहुत से प्रश्न आते हैं। पहले वहीं से शुरू करूं। ''कहा गया कल कि विनोबाजी मूर्ति में अमूर्त का दर्शन करने की सीख देते हैं। वो कैसे?'' कुछ बातें जो अनुभव करता है वोही समझ सकता है, कही नहीं जाती। शायद किसी बुद्धपुरुष का मौन मार्गदर्शन कर सकता है। मेरा समझना ये है यहां कि मूर्ति का दर्शन करते समय व्यक्ति के मन में कोई विचार न हो। विचार बहुत जरूरी है लेकिन विचार की शून्यता इससे भी ज्यादा जरूरी है, ये सत्य न भूले। क्योंकि अध्यात्मजगत में तो आख़िर में विचारशून्यता ही काम आती है। ये हमारे बस की बात नहीं है। हम उसमें कहां पहुंच पाये? छोड़ो! लेकिन कोई सोच न बचे। इवन हमें ये भी पता न रहे कि ये मूर्ति विष्णु की है। हमें ये भी पता न रहे कि ये शिवलिंग है। हमें ये भी ज्ञान न रहे कि ये धनुर्धारी राम है, बंसीधारी कृष्ण है।

उसी मतलब का एक दूसरा भी प्रश्न आया है कि ''बापू, ऐसी स्थिति को केवल सुमिरन या निष्क्रियता कहे या अक्रियता कहे या उदानीसता कहे?'' ये सब शब्द छोड़ दो। शब्दमात्र छोड़ो। शब्द है तो अर्थ निकलेगा। शब्द के पीछे अर्थ दौड़ते हैं, जाते हैं, अनुगमन करते हैं। शब्द आया तो अर्थ आया। अर्थ आया तो प्रतिपक्ष में दूसरा अर्थ आया। ये तर्क का बड़ा जाल है! ब्रह्मसूत्र में भगवान वेदव्यास कहते हैं, तर्क का आश्रय न करे। भक्ति तो कहेगी, प्रेम तो कहेगा कि तर्क का आश्रय न करें लेकिन ब्रह्मसूत्र में भी ये बात है! ये सिद्ध तर्कों से नहीं होगा, विचारों से नहीं होगा। इसीलिए अक्रियता। तो फ़िर सोच शुरू होगा कि मैं अक्रिय हुआ कि नहीं? राजगोपालाचार्यजी ने राजाजी ने गांधीजी के बारे में कहा था कि गांधी भक्तिमारग में भी कोई विशेष को स्थान नहीं देते। भक्ति मानी भक्ति। उसमें कोई विशेष है, ये नहीं। मैं कहता हूं, भक्ति में कोई विशेष दर्जा नहीं होना चाहिए। प्रेम में कोई विशेष दर्जा नहीं होना चाहिए। 'अद्वैष्टा सर्व भूतानां।' एक शे'र सुनाउं। 'साद' साहब का शे'र है-

कांटों से भी मैंने प्यार किया है कभी-कभी।
फूलों को शर्मसार किया है कभी-कभी।

भक्ति करनेवाला कांटों और फूल सब के साथ समान चलेगा।

अल्लाह हे! ये बेखुदी, तेरे पास बैठकर,
तेरा ही इंतज़ार किया है कभी-कभी।

अल्लाह हे! तोबा ये बेखुदी क्या है? ये अपने हाथ की विस्मृति किस किसम की है? इसमें कोई विशेष नहीं है। लेकिन लोग ऐसा समझते हैं! कई लोगों को आप 'राम, राम' करेंगे तो कहेंगे 'ॐ', 'ॐ', 'ॐ!' अरे भाई, हमारे साथ धरती पर रह, तूं उपर चढ़ गया! हमारी औकात नहीं है! हमारी कोई क्षमता नहीं है। एक बस्तु आप माने न माने, मैं कोई दबाव नहीं डालता हूं। बाकी विश्व पर किसी की सत्ता है, तो 'रामनाम' की ही है। एक मात्र हरिनाम की सत्ता है। जगत जब से पैदा हुआ है, 'राम, राम' लेता है। दशरथ का बेटा तो बाद में आया। कई लोग कहते हैं, 'सत्', 'सत्', 'सत्'; 'सत्' बोलने से पाप का नाश नहीं होगा। सत् उच्चारण करना होगा, सत् का स्वीकार करना होगा, सत् का आचरण करना होगा। तभी 'सत्' उद्धार करेगा। लेकिन 'राम' में कोई तकलीफ़ नहीं। 'राम' बोलो और उद्धार, क्योंकि उसकी क्षमता बहुत है। शताब्दिओं से, युगयुगान्तर से ऋषिओं ने यही परमपावन मंत्र का सुमिरन किया है।

मेरे भाई-बहन, रामनाम रोते-रोते पुकारो, सोते-सोते पुकारो, नहाये बिना पुकारो! कैसे भी पुकारो, ये क्षमता से भरा 'हरिनाम' है। तो, मैं आप से ये निवेदन करने चला कि कोई भी शब्द आयेगा तो अर्थ आयेगा। छोड़ो शब्द! शब्द आयेगा तो विशेष-निम्न तुलना आयेगी। किसीको निम्न-ऊंचा मत समझो। और मैं आप से ये भी निवेदन करूं कि आप यदि 'राम राम' बोलते हैं, तो दूसरे से उसको भी विशेष मत समझो। फिर दर्जा, फिर श्रेणियां शुरू हो जाएगी! फिर नामापराध हो जाएगा! इसीलिए अमूर्त भाव के लिए कोई शब्द न हो, अक्रियता, अकर्मण्यता, उदासीनता। फिर व्याख्या शुरू हो जाएगी। और जहां तक ये सब व्याख्याओं का जाल है वहां तक अमूर्त अनुभव में नहीं आ सकता। अमूर्त एक दशा का नाम है, एक स्थिति का नाम है। हां, मुझे लगता है, जो कुछ अनुभव गुरुकृपा से है इसमें लगता है, अमूर्त भाव में एक ही वस्तु रहती है और वो है आंसू। विष्णु दिखता बंद हो जाय, गुरु भी दिखता बंद हो जाय, केवल आंसू रहे। ऐसी स्थिति को अमूर्त भाव माना जाय। ये मेरा जवाब है। विनोबाजी क्या अर्थ करे वो तो विनोबाजी से पूछना पड़ेगा। लेकिन ऐसी अनुभूति का एक उपाय है मेरे भाई-बहन, मैं आप से ये उपाय के बारे में चर्चा करूं। एक उपाय है, आप मोरारिबापू से बातें करते हैं, कथा में आये हैं, सत्संग में आये हैं। 'मानस' पढ़ो, उसकी व्याख्या करो, सत्संग। कोई अच्छी कविता सुनाये, सत्संग। कोई बच्चा अच्छी-सी बात बोल दे, सत्संग। कोई शेरो-शायरी या अच्छा संगीत सुना दे, सत्संग। लेकिन आप कुछ विशेष अनुभव के लिए अपने अंगों के साथ सत्संग करो। अपने हाथ से कभी सत्संग किया कि तूने बुरा काम क्यों किया? ये हाथ जिसको श्रुति ने परमात्मा कहा था, उसके साथ तूने कैसा गंदा वर्ताव किया है? हाथ के साथ ऐसी चर्चा करना सत्संग है। कान से कभी सत्संग किया कि तूने दूसरों की निंदा क्यों सुनी? क्या फायदा हुआ तुम्हें? आंखों से कभी सत्संग किया कि हे मेरे नेत्र, तूने ऐसा क्यों देखा? तेरी आंख में पूजाभाव क्यों नहीं था?

मेरे कहने का मतलब मेरे भाई-बहन, आंखों से सत्संग किया जाय। और योगवाशिष्ठ्य कहते हैं, जिस आंख में करुणा भरी है, जिस आंख में शीतलता है, देखे और दीवाना कर दे! तीसरी बस्तु, जिसकी आंख में भेद नहीं है। बिलकुल निर्भेद नज़र है जिसकी। कोई धक्का लगा दे, लगा दिया; चलो, कोई बात नहीं। किसी ने स्वागत किया, कर लिया; कोई बात नहीं!

शायद मुझे निकाल के पछता रहे हैं आज,
मेहफ़िल में इसीलिए लौट आया हूं मैं।
-बशीब बद्र

ये है अभेद दर्शन। दबे हुए आनंद को प्रगट करती है ऐसी आंख। आंख से सत्संग किया जाय। आंख संवारो। अवश्य, संवारनी चाहिए। आंख बहुत बड़ा साधना का माध्यम है। फिर फिलम का गीत मुझे याद आता है-

तेरी आंखों के सिवा दुनिया में रखा क्या है।
ये उठे सुबह ढ़ले ये झूके शाम ढ़ले,
मेरा जीना मेरा मरना, इन्हीं पलकों के तले...

जिसको श्रीमद् भागवतकार शुकदेव की जबान से कहलाते हैं, 'प्रेमविक्षणम्।' तो, आंखों से सत्संग किया जाय। हाथों से सत्संग किया जाय। पैरों से सत्संग किया जाय कि हे कदम, जहां जाना था वहां तो तू मुझे नहीं ले गया! तू मुझे कहां ले चला? जिस लिए मुझे ये कदम मिले थे, चरण मिले थे उसका तो दुरुपयोग कर लिया! अपने अंगों से सत्संग किया जाय तब विशेष अनुभूति के द्वार खुलते हैं। मुझे लगता है हरेक बुद्धपुरुषों ने अपने अंगों से सत्संग किया है, सिवा हठयोगी! जिन्होंने कान काट दिये! जिन्होंने ऐसा-ऐसा करके तलवे में काना लगा दिया! जो कांटों की सेज पर सोये!

विद्या बहुत महिमावंत है, लेकिन अहंकार की मिट्टी उसको मलिन कर देती है।-योगवाशिष्ठ्य। थोड़ी-सी मूढ़ता हमारी क्षमता को मलिन कर देती है। कभी ये भी मत गुरुर करना कि हमने इतनी कथा सुनी! आप को मलिन कर देगी। आप रोज मैं पहली बार कथा सुनने आया हूं, ऐसा चित्त लेकर कथा में आईए। मुझ से तुम्हें ज्यादा चौपाईयां आती है तो मेरा प्रणाम, लेकिन आओ तो बिलकुल अनपढ़ होकर आओ। क्योंकि मैं अनपढ़ होकर रोज आता हूं। जानकारी बहुत परेशान कर देगी, साहब! बहुत जिन्होंने जाना ऐसे कई लोगों की आख़िरी अवस्था में बिलकुल विकृत अवस्था मैंने देखी है। जिससे कुछ पाया हो उसकी कुछ सेवा करो। सेवा मीन्स उसका पैर दबाओ? चरण प्रक्षालन करो? चरणस्पर्श करते रहो? नहीं। सेवा का अर्थ है, उनकी अवस्था को समझो। धन से सेवा होती है बुद्धपुरुषों की? नहीं तो। 'सेवा' बड़ा प्यारा शब्द है। लेकिन सेवा आती है तो हम यही मानते हैं, पैर दबा दें, पैर धो लें, फलां कर लें, फलां कर लें! ये है, चलो, जिसकी जो श्रद्धा। सेवा छीनी नहीं जाती, वो कृपालु देना चाहे कि लो, लो, ये कर लो। मैं आप से निवेदन करूं, हम बुद्धपुरुषों को पहचान नहीं पाते, ये भी थोड़ा अच्छा है। लेकिन यदि कोई पहचान भी ले तो एक बात का ध्यान रखना कि उसकी सेवा, उसकी सुश्रुषा, उसकी सुविधा, उसकी जरूरत नहीं है। भूल से भी उसका अपराध न हो जाय। उसको तो पता नहीं लगेगा कि मेरा अपराध हो गया। तुम्हारा अपराध ही तुम्हें दंड देगा। ऐसा 'मानस' में लिखा है। मैं और आप बहुत सावधान रहे कि कभी भी बुद्धपुरुष का द्रोह न हो जाय।

गुरु का अनुराग; गुरु का विराग; हमारी साधना को उपर उठाने के लिए कभी मूढ़ता आ गई तो उसी समय रुख बदल कर थोड़ा बेरुख हो; और चौथा होता है, वो कुछ बोले ना, चुप हो जाय तब बहुत सावधान रहना। मैंने कोई साधना नहीं की। साधना हम क्या करे? लेकिन मैं इतना जरूर कहूं कि मैंने मेरे गुरु से चार बस्तु से कभी द्रोह नहीं किया। व्हेन आई वोझ नाइन-टेन एबाउट। मैं रात को बैठा रहता था रामजी मंदिर के पुराने ओटले पर। कभी दो बजे, कभी तीन बजे तक! मेरी मौज थी, मैं बैठा रहता था। मैं जागता था तो वो जागते थे और उस समय थोड़ा रुख बदलता था, 'देर हो गई। तीन बज गये, जाओ।' तो इस रुख बदलता था, उसको मैं आशीर्वाद समझता था। कृपा और उनका जो प्यार मिलता था उसका अनादर कभी नहीं हुआ। और उनका विराग अद्‌भुत रहा! एक रज भी आ जाय तो बेड़ा

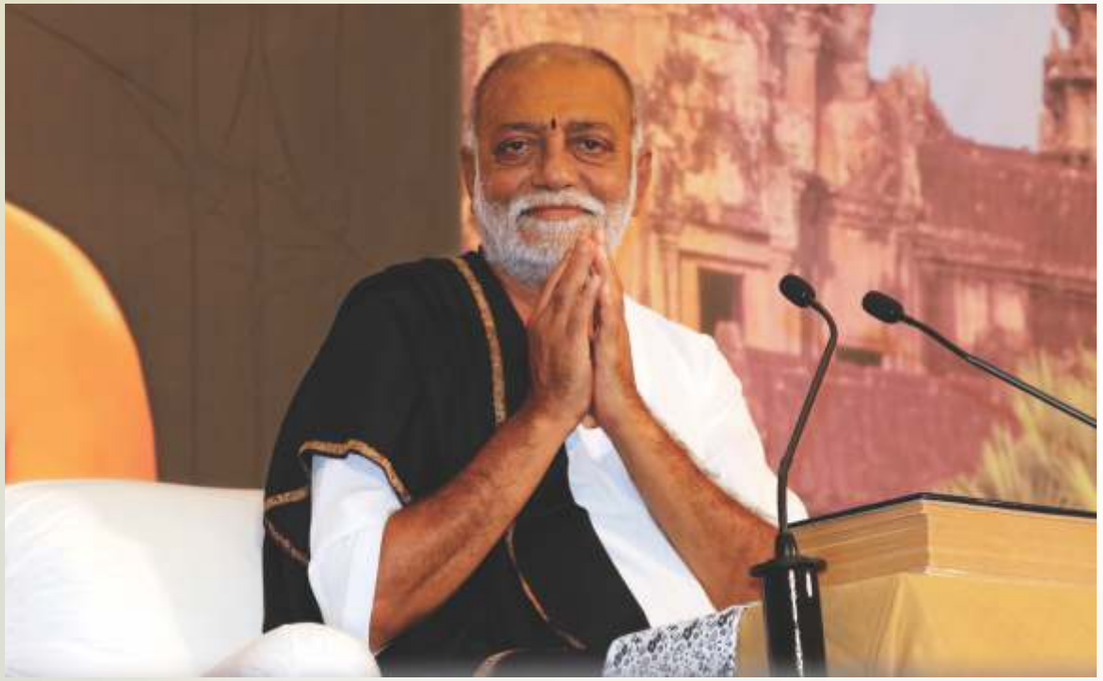

पार हो जाय! और उसकी चूपी। इनके अनुराग को समझे। इनके विराग को समझे। इनके बदले रुख को समझे। और उनकी चूपी को समझे।

तो, तूने मुझे पैर दिये, ये पैरों से मैं तेरे दर्शन के लिए मंदिर नहीं आया तो कुसंग हो गया। विशेष अनुभूतिओं के लिए साधक को चाहिए अपने अंगों से सत्संग करें। ये निवेदन मेरा नहीं है, ये तुलसीदासजी का है-

देहि सतसंग निज अंग श्रीरंग ।

हे श्रीरंग, हे परमात्मा, हे विष्णु, तू मुझे मेरे अंगों का सत्संग दे कि मैं मेरी आंखों से बातें करूं, मैं मेरे कानों से सत्संग करूं। ये बिलकुल क्रांतिकारी सत्संग की उद्घोषणा है। कभी किसीने कहा, मौन सत्संग। कभी किसीने कहा, शास्त्र सत्संग। मैं हर अच्छी बातों को सत्संग के रूप में मोड़ देता हूं। लेकिन निज अंगों से किया गया सत्संग विशेष अनुभूतियां प्रदान करता है तब कोई निम्न, कोई श्रेष्ठ नहीं बचता।

'मोह मूल है पर इसका साधक को कैसे पता चले?' फूल खिले तब। मूल जब अंकुरित हो तब समझना कि ये मूल है। थोड़ा विशेष काम प्रगट होने लगे, विशेष क्रोध प्रगट होने लगे, मात्रा से ज्यादा लोभ प्रगट होने लगे, तो समझना कि ये मूल है। सभी व्याधि की जड़े है ये, सीधी-सी बात है।

तो 'मानस-बिष्नु भगवान', जिसको केन्द्र में रखते हुए हम संवाद कर रहे हैं।

संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना ।

उपजहिं जासु अंस तें नाना ।।

जिसके पास धन है उसको हम धनवान कहते हैं। जिसके पास विद्या है उसको हम विद्यावान कहते हैं। जिसके पास ज्ञान है उसको हम ज्ञानवान कहते हैं। जिसके पास बल है उसको हम बलवान कहते हैं। वैसे

जिसके पास छ प्रकार के भग होते हैं उसको हम भगवान कहते हैं। छ प्रकार का एक विशेष प्रकाश जिस व्यक्ति में हो उसको हम भगवान कहते हैं। हमारे देश में अवतारों को ही भगवान कहा है, ऐसा नहीं है। मुनिओं को, ऋषिओं को भी भगवान कहा है। भगवान वशिष्ठ, भगवान वाल्मीकि, भगवान व्यास, भगवान परशुराम, भगवान शंकराचार्य, भगवान माधवाचार्य, भगवान वल्लभाचार्य, भगवान रमण महर्षि, भगवान रामकृष्ण आदि-आदि। शर्त नहीं लेकिन ये छ वस्तु जिसमें होनी ही चाहिए। छ प्रकार के भग। एक, जिसमें बहुत ही यश है। जिसका यश दिग्दिगंतों में फैला हुआ है। 'बिमल यश', वो भगवान पद का अधिकारी है।

बरनउं रघुबर बिमल यश...

राम को भगवान कहते हैं, भगवान कृष्ण को हम भगवान कहते हैं क्योंकि उसका निर्मल यश दिग्दिगंतों में फैला है। आज तक, आज भीषण कलिकाल में भी हम इसका यशगायन करते रहते हैं, सुनते रहते हैं। तो, जहां यश है, निर्मल यश, वो एक प्रकार का भग है। लेकिन यश जितना फैलेगा, वो निर्मल होते हुए भी जमाना उसमें कुछ न कुछ कमी निकालेगा। तो केवल यश हो, भगवान नहीं, लेकिन कोई इसी यश का अपवाद करे तो भी शांत रह सके वो भगवान है। राम के पवित्र यश में कई लोगों ने निंदा की चेष्टा की कि भगवान ने वालि को छिपकर मारा! एक ऊंगली ऊठी! यद्यपि है नहीं। राम का तो निर्मल यश है। तो अपवाद मिलने के बाद भी राम का यश आज भी गाया जाता है क्योंकि जिन लोगों ने दाग लगायें उसके लिए भी भगवान को जरा भी वो नहीं हुआ। विष्णु को हम भगवान कहते हैं क्योंकि विष्णु का यश और ध्यान देना, सर्जक को यश मिलता है, अवश्य। अनावश्यक वस्तु का विसर्जक जो है उसको भी यश मिलता है, यस। लेकिन सब से ज्यादा यश मिलता है, जो रचना हुई जिसका जिसने पालन किया है। विष्णु है पालकतत्त्व। तो विशद यश है विष्णु का। यहां (कम्बोडिया विष्णुमंदिर) तक पहुंचा यश विष्णु का।

दूसरा, श्री। श्री का एक अर्थ लक्ष्मी है; जिसके पास लक्ष्मी हो वो भगवान। लक्ष्मी हो वो भगवान, धन हो वो नहीं! ये धनवान है, भगवान नहीं है! धन और लक्ष्मी में बहुत अंतर है। बहुत परिश्रम से कमाया जाय और जब किसी सत्कर्म में यूझ करना है तो एक क्षण में युझ करने के लिए तैयार हो जाय उसको कहते हैं लक्ष्मी। और बहुत ईज़ी मनी आ जाय और खर्चा करने में बहुत देर लगे तो उसे कहते हैं धन। ये द्रव्य नहीं है। द्रव्य ये है जो प्रवाहित हो, जो बहे। श्री का एक अर्थ है तेजस्विता, एक आभामंडल। तीसरा भगवान का सूत्र है, वैराग्य। जिसमें वैराग्य हो वो भगवान। 'महंतो महाप्राज्ञा निमित्ते विनिवेवहि।'-योगवाशिष्ठ्य। हे राम, वैराग्य का जन्म किसी निमित्त के कारण न हुआ हो और कोई घटना के कारण न हुआ हो, केवल विवेक के कारण हुआ हो वो वैराग्य। सत्संग करते-करते विवेक आ जाय। शंकराचार्य ने कहा, सत्संग करने से नि:संगता आयेगी। और नि:संगता आने से निर्मोहत्वं प्रगट होगा। और उसमें से ही लब्ध होगी जीवनमुक्ति। तो विवेकजनित वैराग्य ये ईश्वर का भगपना है। भगवान विष्णु को हम भगवान विष्णु कहते हैं, उसने क्या लक्ष्मी त्याग नहीं किया? वो समृद्ध है। सब का पालन करते हैं, सब को छोड़कर भागे नहीं लेकिन विवेक के कारण कहा गया। तो जहां यश है, जहां श्री है, जहां वैराग्य है।

चौथा सूत्र है, जहां ज्ञान है; जिसमें ज्ञान हो उसको हम भगवान कहते हैं। अब कैसे परीक्षा करे कि उसको ज्ञान हो गया? तुलसीदासजी ने उसकी एक कसौटी दी।

ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं ।

देख ब्रह्म समान सब माहीं ।।

वोही छोटी-सी व्याख्या ज्ञान की। ज्ञान वो है कि जहां बिलकुल अभिमान नहीं है। बस, सीधी-सी बात। और

सब में एक समान ब्रह्मदर्शन करे, केवल ब्रह्मभाव में जीये। ऐसा ज्ञान जिसमें हो वो भगवान है। अब, कहीं 'क्षमा' लिखा है, कहीं 'धैर्य' लिखा है, जो पाठ हो। मेरे निकट पड़नेवाला सूत्र है 'क्षमा।' जो दूसरों को क्षमा करता चले वो भगवान है, बस। दंड देने का कारण है तो भी जो क्षमा करे। बहुत प्यारा शब्द है मेरे लिस्ट का 'क्षमा।' कहीं 'धैर्य' शब्द आया है। जो बहुत धैर्य रखे वो भगवान। तुलसीदासजी ने कहा है, धीरज की कसौटी विपत्ति में होती है, सुविधा में नहीं होती।

धीरज धर्म मित्र अरु नारी ।
आपद काल परिखिअहिं चारी ।।

गोस्वामीजी कहते हैं, चार बस्तु की कसौटी विपत्ति में होती है। अपनी धीरज की कसौटी विपत्ति में होती है।

मेरु रे डगे पण जेना मनडां डगे नहि,
मरने भांगी रे पडे भरमांड रे...

दूसरों को ढ़ाढ़स देना अच्छा है, अपने पर आये तब धीरज रखना बहुत मुश्किल है। दूसरा, धर्म की कसौटी विपत्ति में होती है। मित्र, दोस्त, सखा जो है उसकी कसौटी तो विपत्ति में ही हो। सुविधा में तो कई दोस्त मिल जाते हैं, बार-बार मिलते हैं। और चौथा है, नारी। स्त्री की कसौटी विपत्ति में होती है। मातृशक्ति की कसौटी धैर्य में है। वो बहुत धीरज रख सकती है। सब से बड़ा धैर्य तो उसका है अपने गर्भ में नव मास तक चेतना का धीरज से पालन करती है, पुरुष नहीं कर सकता। ये मातृशक्ति कर सकती है। मातृशक्ति की महिमा अद्‌भुत है।

तो यश, लक्ष्मी, ज्ञान, वैराग्य, धैर्य अथवा क्षमा और छठ्ठा समग्र ऐश्वर्य। हर प्रकार का ऐश्वर्य जिसकी परिकम्मा करता हो। ऐश्वर्य मीन्स रजोगुणी बात नहीं है। तमोगुणी तो है ही नहीं। परमात्मा का ऐश्वर्य। अनंत, अनंत, अनंत ऐश्वर्य!

अमित रूप प्रगटे तेहि काला ।
जथा जोग मिले सबहि कृपाला ।।

तो, भगवान विष्णु के बारे में जो कुछ बातें स्मृति में आती है, आप के सामने रखता हूं। ये वाङ्मय पूजा है विष्णु की। कुछ बात कल करेंगे। आज थोड़ा कथा का क्रम उठाउं। कल हम रामनाम की महिमा का गायन कर रहे थे। हरिनाम की विपुल और विशद महिमा है। कलियुग की श्रेष्ठ साधना है नामसाधना। चारों वेद में और चारों युग में नाम की ही बोलबाला है। बातें तो बहुत-सी हम कर लेते हैं लेकिन आख़िरी सार तो मेरा भी यही रहा है हरिनाम।

भगवान शंकर का अपमान करने के लिए दक्ष ने यज्ञ किया। दक्ष के यज्ञ में ब्रह्मा, विष्णु और महेश के सिवा सब देवता जाते हैं। वहां सती का अपमान होता है। सती दक्ष के यज्ञ में समाप्त हो जाती है और हिमालय की पुत्री के रूप में श्रद्धा का जनम होता है। और गोस्वामीजी लिखते हैं कि पार्वती-श्रद्धा जब प्रगट हुई तो बड़े-बड़े महात्मा लोग बिना बुलाये आने लगे। इनमें नारद भी आये। नारद को प्रार्थना की हिमाचल ने कि मेरी बेटी की हस्त की रेखा देखकर आप बताये, उसका भाग्य कैसा है? उसको कैसा वर मिलेगा? नारद ने अपनी विद्या से सब कहा कि शंकर उसको मिले तो दूषण, भूषण बनेगा। और शंकर को प्राप्त करने के लिए तुम्हारी बेटी तप करे। माता-पिता चिंतित! छोटी उम्र में बेटी को तप करने की सूचना कैसे दी? लेकिन पार्वती ने ही कहा कि मुझे एक स्वप्न आया, स्वप्न में गौर वर्ण एक विप्र ने मुझे कहा कि तू तप कर, तप की महिमा मुझे समझाई गई-

तपबल रचइ प्रपंचु बिधाता ।
तपबल बिष्नु सकल जग त्राता ।।
तपबल संभु करहिं संघारा ।
तपबल सेषु धरइ महिभारा ।।
तप अधार सब सृष्टि भवानी ।
करहि जाइ तपु अस जियँ जानी ।।

दूसरे संदर्भ में इन पंक्तिओं का अध्ययन करे। एक नई परिभाषा तप की मिलती है। तप मानी सर्जन करे। सृष्टि का सर्जन तो ब्रह्मा ने किया लेकिन तुम्हारे-मेरे किसी के भी मन में जगत को उपयोगी कोई भी वस्तु प्रगटे तो ये आप का तप है। ये वस्तु क्रोध से प्रगटी न हुई हो, बोध से प्रगटी हो तो तप है। एक माता नव महिना चेतना को गर्भ में रखकर फिर नव महिने के बाद उसको प्रगट करती है तो ये माँ का तप है। एक किसी महापुरुष को साधना करते-करते बुद्धत्व प्रगट हो जाता है तो बुद्धत्व प्रगट होने से पहले की सभी प्रक्रिया तप है। मेरे और आप के मन में कोई नई चीज प्रगटे तो स्व से लेकर सर्व के लिए उपयोगी हो तो वहां किसी न किसी रूप में तप ने काम किया है।

दूसरा, तप के बल से विष्णु परिपालन करता है; दूसरों का परिपालन करना, पूरे जगत को छोड़ो, एक घर का परिपालन करना भी मुखिया का तप होता है; गृहनायक का तप होता है। 'तप' शब्द आता है तो हम एक फ्रेम में उसको बांध लेते हैं कि कोई जंगल में बैठ गया है! यद्यपि उसकी एक महिमा तो है ही, लेकिन ईक्कीसवीं सदी का तप संशोधन मांग रहा है। तुम पांच दिन उपवास करो ये तप नहीं लेकिन तुम रोटी बनाकर पांच भूखे को खिलाओं ये ईक्कीसवीं सदी का तप है। इसका मतलब ये नहीं कि उपवास आप का तप नहीं है। कैसी भी मुश्किल आये और आप मुस्कुराते रहे तो ये आप का तप है। कितनी निंदा-अपवाद हो तो भी आप शांति को बरकरार रखे ये आप का तप है। सोच समझकर आप को सहना पड़े ये आप का तप है। तप के बल से हम विवेक प्राप्य वैराग्य से हमारी भीतरी मानसिक स्थिति से कचरा निकालना शुरू कर दे तो उसके पीछे लगी प्रक्रिया भी तप है। एक आदमी पूरे घर का बोज़ उठाता है तो तप नहीं है? एक बुद्धपुरुष अपने आश्रित के गुन्हाओं का दंड रोकता है तो तप नहीं? गोस्वामीजी सार्वभौम सूत्र लगाते बोले, ये पूरी सृष्टि तप आधारित है।

मेरे भाई-बहन, तप की ये भी परिभाषा हो सकती है। और पार्वती तप के लिए जाती है। कठिन तप करती है। तप के परिणाम स्वरूप आकाशवाणी हुई और पार्वती को वरदान मिला कि तुम्हें शंकर मिलेंगे। तुलसीदासजी लिखते हैं, यहां पार्वती को ये वरदान मिला। यहां भगवान शंकर समाधि में बैठ गये हैं। और भगवान राम प्रगट हुए और शिव को कहा, आप शादी करो। शिवजी ने हां कह दी। सप्तऋषि ने फिर एक बार पार्वती की प्रेम परीक्षा की और पार्वती ने कहा कि कोटि-कोटि जन्म लूंगी लेकिन ब्याहूंगी तो शिव को ही ब्याहूंगी। मैं गुरु के बचन को पकड़ रखूंगी। नितांत शरणागति सुनकर सप्तऋषि लौट आये और पार्वती को माता-पिता घर ले जाते हैं।

'तप' शब्द आता है तो हम एक फ्रेम में उसको बांध लेते हैं कि कोई जंगल में बैठ गया है! यद्यपि उसकी एक महिमा तो है ही, लेकिन ईक्कीसवीं सदी का तप संशोधन मांग रहा है। तुम पांच दिन उपवास करो ये तप नहीं, लेकिन तुम रोटी बनाकर पांच भूखे को खिलाओं ये ईक्कीसवीं सदी का तप है। कैसी भी मुश्किल आये और आप मुस्कुराते रहे तो ये आप का तप है। कितनी निंदा–अपवाद हो तो भी आप शांति को बरकरार रखे ये आप का तप है। सोच समझकर आप को सहना पड़े ये आप का तप है। एक आदमी पूरे घर का बोज़ उठाता है तो तप नहीं है? एक बुद्धपुरुष अपने आश्रित के गुन्हाओं का दंड रोकता है तो तप नहीं?

मानस-विष्णु भगवान

॥ ४ ॥

गुरु स्वयं सांस लेता ग्रंथ है

बाप! कथा का आरंभ करें, विषय प्रवेश करें वेद के एक मंत्र से। बड़ा प्रसिद्ध मंत्र है ये जिसमें भगवान विष्णु का ज़िक्र है। यहां विष्णु यानी भगवान विष्णु तो है ही, हरि तो है ही, लेकिन वो एक पद का परिचय है, जिस पद पर पहुंचनेवाला कभी लौटता नहीं, न लौटाया गया। उस अवस्था, उस पड़ाव का नाम है वेद में भगवान विष्णु। ऋग्वेद तो आप सब जानते हैं, 'अग्नि' शब्द से शुरू होता है, 'अग्नि पुरोहित।' लेकिन दो शब्द का जोड़ वेद से बाहर से है, जो वेद के उच्चारण से पहले अक्सर हमारी भारतीय वेदपाठ की परंपरा में ये दोनों पहले बोले जाते हैं। और वो दो शब्दब्रह्म है, 'हरि ॐ'। ये पहले बोला जाता है। 'हरि' मानी विष्णु और 'ॐ' मानी ब्रह्म। यानी वेद के आरंभ में ऋषि 'हरि ॐ' उच्चारण करके भक्ति और ज्ञान का समन्वय कर देते हैं। बहुत बड़ा काम हुआ भारत की भूमि पर वेदों के अवतरण के द्वारा। तो, 'हरि ॐ' ये बाहर से लाया गया है। अब मंत्र शुरु होता है-

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्।।

'सदा पश्यन्ति सूरयः।' जैसे आंखवाले सूर्य का दर्शन कर लेते हैं। जब वो चाहे वैसे एक ऐसा परमपद है विष्णु का जहां आंखवाले, जिसके पास बहुत उत्तम चक्षु है या तो यूं कहे कि दिव्य दृष्टि है गुरुकृपा से वो इस पद की ओर देखते रहते हैं। और ये पद वो है जहां से न लौटाया जाता है, न लौटने की कोई संभावना है। सरिता सागर में खो जाय ऐसा ये पद है। तो, विष्णुपद की गरिमा वेद में इस रूप में आई है और आप जानते भी है, 'पुरुषसूक्त' पूरा गाया गया है, वो तो विष्णु की ही तो महिमा का गायन है। तो बाप, वेद भी विष्णु की इस रूप में उपासना करता है। और 'मानस' में भी वेद विष्णु की उपासना करता है।

अजहूँ मानहु कहा हमारा । हम तुम्ह कहुँ बरु नीक बिचारा ।।
अति सुंदर सुचि सुखद सुसीला । गावहिं बेद जासु जस लीला ।।

सप्तऋषिओं ने पार्वती की परीक्षा करते हुए कहा कि अभी भी हमारी कही बात मान, शंकर को ब्याहने की जिद्द क्यों करती है? हमनें तेरे लिए बहुत अच्छे वर के बारे में सोचा है। कैसा है? अति सुंदर है वो, पवित्र है, सुख देनेवाला है, शीलवान है। तो, वेद में जो विष्णु का वर्णन-कथन है, उसके यश की लीला उस विष्णु के यश का गान गोस्वामीजी कहते हैं, वेद भी करता है। हे पार्वती, उसी पड़ाव के साथ हम तुम्हें जोड़ दे तो बहुत सुंदर है। फिर कहते हैं 'सुचि', विष्णु बहुत पवित्र है। लक्ष्मी पैर दबाये और पवित्र रहना बड़ा मुश्किल काम है! लेकिन फिर भी ये सुचि है। सुखद है, विष्णु सब को सुख देता है। लक्ष्मीपति होते हुए वो शील कभी छोड़ता नहीं। ऐसा बर तुम्हे लाकर मिल देंगे। और भवानी मुस्कुराकर हंस पड़ी!

महादेव अवगुन भवन बिष्नु सकल गुन धाम ।
जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम ।।

'महाराज, आप ने बताया कि विष्णु सकल गुनधाम है। माना; और महादेव भस्मांग है, खोपड़े की माला पहनता है, भुजंग को धारण करता है, भीख मांगता है। लेकिन महाराज, जिसका मन जहां रम गया उसको उसीका ही काम होता है। मेरे लिए तो कैलासवाला ही वरण्य है।' ये प्रीति का दर्शन है, ये प्रेम का दर्शन है। यहां वैकुंठलोक और कैलासलोक का भेद नहीं। कोई दूसरे का पक्ष कितना ही आप के सामने मजबूती से रखे, तो भी अपना निष्ठा का केन्द्र बदलना मत। पार्वती तो कहती है कि आप क्या समझाये मुझे लेकिन भगवान शंकर जिसको मैं ब्याहना चाहती हूं वो स्वयं आकर मुझे कहे कि छोड़ मुझे पाने की जिद्द, तो भी मैं मानुंगी नहीं। मैं तो गुरुनिष्ठा को माननेवाली हूं।

नारद बचन न मैं परिहरऊँ ।

नारद के बचन को मैं नहीं छोडूंगी। हम जैसों के लिए कोई एक 'परमं पदं' कौन? गुरुनिष्ठा। बुद्धपुरुष का आसन। जिसने अपने श्रद्धेय की निष्ठा का एक पड़ाव मिल गया है वो फिर वेद क्या कहता है उसकी परवाह नहीं करेगा। अनादर भी नहीं करेगा। लेकिन उसको वेदप्रमाण की जरूरत नहीं होगी। उसको तो खुद अपनी श्रद्धा और प्रीति का भी मारग है उस पर उसकी दृष्टि रहेगी।

ज़मानेभर के सवालों का जवाब दे दूंगा 'फ़राज़',
नमी आंखों कहती है कि मुझे तुम याद आते हो।

मैं दुनिया के हर तर्क को काट सकता हूं, लेकिन मेरा गुरु याद आता है; गुरु निष्ठा याद आती है।

व्यासपीठ यदि 'रामचरित मानस' का तीन विभाग करना चाहे तो ये तीनों जगह किसी न किसी गुरु ने काम किया है। तीन महिलायें बहाना बनी है। पीछे संचार था गुरुनिष्ठा का। एक भाग है राम-लक्ष्मण को लेकर विश्वामित्रजी जाते हैं यज्ञरक्षा, अहल्याउद्धार, सीयराम विवाह ये सब। लेकिन उसके केन्द्र में एक स्त्री है, जिसका नाम है ताड़का। एक भाग अवतारलीला का ताड़का से शुरू होता है। राम की तरह जीवन की भी यात्रा है। इस यात्रा में हमें यदि सफल होना है, भक्ति तक पहुंचना है, प्रेम तक पहुंचना है, उसको सब से पहले क्रोध पर कंट्रोल करना चाहिए। ये पहली शर्त है। आदमी क्रोध को निर्वाण नहीं दे सकता तब तक यात्रा पूरी नहीं होगी। और ये क्रोध को समाप्त करने में सहायक होता है गुरु। मुझे लगता है कि ये काल में बुद्धपुरुष का आश्रय बहुत जरूरी है। मेरे जैसे को तो है, है, है। आप अपनी जाने! कौन साधन से हम क्रोध को कंट्रोल करें? क्रोध हमें पिशाच बना देता है। चाहे पुरुष करे, चाहे स्त्री करे। मुझे कई लोग कहते हैं, कई लोगों ने बापू आप की बहुत कथा सुनी है फिर भी इतना क्रोध करते हैं! मैंने कहा, 'मेरा श्रोता क्रोध नहीं करता। जब तक वो श्रोता है वो क्रोध नहीं करता! श्रोता मिट जाता है, अपनी जात पर जाता है, तब क्रोध करता है! कथा असफल नहीं है। लेकिन फिर हमारे स्वभाव और प्रकृति पर हम उतर जाते हैं। क्यों हम निंदा करते हैं? क्यों हम इर्ष्या करते हैं? क्यों हम द्वेष करते हैं?

किसी भी सद्गुरु में पांच बस्तु देखना। वेद जिसको 'पंचधीरः' कहते हैं। धीरजवान के पांच लक्षण है। धीरजवान कौन? गुरु; पंचधीरः। 'अनुजनां यतते पंचधीरः।' किस वेद का है ये मुझे याद नहीं। यास्काचार्य ने उसका भाष्य ऐसा किया है कि 'धीरमति यस्य सः धीरः।' बहुत प्यारी व्याख्या लिए आती है। हम 'धीर' नहीं है, हम बुद्धि में खेलते हैं! हम पंडित हैं, क्योंकि हम बुद्धि में खेलते हैं। सरस्वती उतरती है भक्ति के लिए किसी बुद्धिमान के आंगन में खेलने के लिए। हमारे लिए क्या है कि बुद्धि घर है और हम उसमें खेल रहे हैं। अब घर नहीं थकेगा, खेलनेवाला थक जाएगा! लेकिन जिसमें बुद्धि खेलती है वो संत नहीं थकेगा, बुद्धि थक जाएगी! खेलते-खेलते सो जाएगी, विश्राम प्राप्त करेगी। बुद्धि वो है जिसमें पंडित खेलता है। सद्गुरु वो है जिसमें बुद्धि खेलती है। इसीलिए सद्गुरुओं को 'पंचधीर' कहा है वेद ने। गुरु की चर्चा होती है, प्रेम की चर्चा होती है, सत्य

की चर्चा होती है, राम की चर्चा होती है, तब हमें बहुत अच्छा लगता है लेकिन ये अच्छा लगता है इसीलिए उसका परिचय बहुत जरूरी है। फिर किताब काम नहीं करेगी, फिर खुद को उतरना होगा। किताबें पड़ी रहती है, आदमी का स्वानुभव काम आता है। गुरु स्वयं ग्रंथ है, पढ़ना है तो उसे पढ़ो। ठीक किया हमारी शीख परंपरा ने, नानकीय परंपरा ने ग्रंथ को ही गुरु बना दिया। गुरु साक्षात् एक ग्रंथ है। उसकी कृपादृष्टि, उसके बचन ये सब उनके प्रकरण है; ये सब उनके अध्याय है। गुरु स्वयं सांस लेता ग्रंथ है।

तो, मेरे कहने का मतलब कि पहचान लिया जाय एक बार। यहां कोई युनिफ़ोर्म की बात नहीं आएगी। छाप-तिलक की बात नहीं आएगी। जो पहुंच जाता है तो छाप-तिलक से मुक्त हो जाता है। अमीर खुशरो ने तो कहा कि मेरे निझामुद्दीन ने मेरे छाप-तिलक, शाखा-प्रशाखा ये सब मेरी खतम कर दी!

छाप-तिलक सब छिनि रे तों से नैना मिलाय के...

ये सब सूफियाना चिंतन है।

इन्हीं लोगों ने ले लिया दुपट्टा मेरा...

फिल्म 'पाकीज़ा' का ये गीत सूफ़ियाना गीत है। यूझ कहीं भी हो गया, क्या फ़र्क पड़ता है? गहना तो शूर्पणखा भी पहन सकती है, जानकी भी पहन सकती है। किसके अंग पर गहना गया इसकी इज्जत होती है, साहब! सूफ़ियाना अंदाज़ में दुपट्टे का अर्थ मेरी व्यासपीठ का है द्वैत। मेरे बुद्धपुरुष ने मेरा द्वैत छिन लिया। मैं द्वैत था इसीलिए क्रोध करता था। और मेरा गोस्वामीजी दस्तखत करते हैं, साइन करते हैं-

क्रोध कि द्वैतबुद्धि बिनु द्वैत कि बिनु अग्यान ।

कभी शंकराचार्य ने, कभी बुद्ध ने, कभी महावीर ने, कभी नानक ने हमारा द्वैत निकाल दिया। और सूफ़िया कलाम 'पाकीज़ा' का कहता है-

हमरी न मानो सिपहियां से पूछो...

ये हनुमानजी सिपहियां है। रक्षक है ये।

साधुसंत के तुम रखवारे। असुर निकंदन रामदुलारे।।

कितने-कितने संकेत है!

हमरी न मानो, रंगरज़िया से पूछो...

हमने क्यों सफेद कपड़ा गेरुआ कर दिया, पूछ मेरे गुरु को। हमें मत पूछ, हमें तो वहां से इशारा हुआ और उनके रंग में हम रंग गये! कोई गणवेश नहीं, कोई छाप-तिलक नहीं। ये सब शुरू के मिट्टी के खिलौने है। सोने के मिल जाते हैं तो मिट्टी के खिलौने नाशवंत सिद्ध हो जाते हैं! तो बाप! पहचानना तो पड़ेगा। होता तो है, पहचाना नहीं जाता। उसके बिना चलता नहीं। भगवान तो निर्वाण लेके चला जाता है अवतारकार्य पूरा करके, उसके बाद कौन चलाता है? बुद्धपुरुष चलाते हैं जगत को। कभी अरविंद, कभी रमण, कभी रामकृष्ण, कभी कोई, वो ही तो चलाते हैं। परमात्मा तो कूटस्थ-तटस्थ हो जाता है तो कभी-कभी तो कुछ पता ही नहीं लगता कि वो अंदर बैठा है फिर भी कुछ करता नहीं! पाप करने देता है, पुन्य करने देता है! अंदर बैठा है, रोकता नहीं है!

'पंचधीरः', पांच परिचय है बुद्धपुरुषों का। वेद के इस मंत्र की तो बहुत से एंगल से व्याख्यायें हुई है। कई मनीषिओं ने उसकी बिलग-बिलग व्याख्या की है। जहां पांच देखो, समझना अपनी निष्ठा अेफ.डी. कराने जैसे चरण है ये। एक, जिसकी आंखों में, जिसकी वाणी में, जिसके मनोभाव में प्रेम और करुणा के सिवा कुछ न हो। जब हमें महसूस होने लगे कि यहां करुणा और प्रेम के सिवा कुछ नहीं। और इस प्रेम और करुणा के पीछे हेतु भी तो नहीं है। और हम ऐसी दुनिया में जी रहे हैं जहां हेतु के बिना कोई कुछ नहीं करता! एक ही तो स्थान होता है, जहां हेतु रहित प्यार का खज़ाना है। दूसरा, बहिर् स्वच्छता और भीतरी पवित्रता अपनेआप को अनुभव में आये। 'शुचिदक्षः', ये परिचय है धीर व्यक्ति का। तीसरा लक्षण, जो उद्यम करता है, ये धीरजवान का लक्षण है। श्रम करता है, निष्क्रिय नहीं। बुद्धपुरुष श्रमनिष्ठ है। अब आप कहेंगे कि रमण महर्षि तो अरुणाचल की गुफ़ा में बैठे रहते थे। क्या श्रम? लेकिन मानसिक श्रम कम नहीं करते थे! चिंतन का श्रम होता है। वहां बैठे-बैठे कईओं के दिल

के कंवल खोल देते थे। जिंदगीभर कबीर चादर बूनते रहे; वहां तक कि वो चादर काशी की बाज़ार में बेचने भी जाते थे। 'ये राम की चादर है, तुम सब राम हो, ले जाओ', ऐसा कहते थे। मूल्य क्या? बोले, 'राम।' किसने बनाई? 'राम ने।' बेच कौन रहा है? 'राम।' लेनेवाला कौन? 'राम।' जीवनपर्यंत श्रमिक है कबीर। इसीलिए कबीर का एक टुकड़ा है-

कह कबीर कछु उद्यम किजे।

हमारे गुजराती साहित्य के एक बहुत अच्छे गज़लकार उर्दू में भी सफल शायर हर्ष ब्रह्मभट्ट, वो कहते हैं-

श्रम करो ओ संतजी, आश्रम नहीं।

जो उद्यम करता है जीवों के लिए, साधकों के लिए, आश्रितों के लिए।

चौथा लक्षण, निर्भयता। बुद्धपुरुष होगा वो बहुत निर्भय होगा, अभय होगा। मैं तो दो-चार कथा से बिलकुल तळपदी गुजराती व्याख्या करता हूं कि 'बीवे इ बावो नहीं!' बस इतनी ही छोटी-सी व्याख्या। डर किसका? और पांचवां बहुत प्यारा लक्षण है, मौन। जो बहुत जरूरी हो तब सीमित शब्दों में बात कह दें। दीर्घसूत्री न हो।

भक्तिमारग की यात्रा का पहला मुकाम और उसमें विक्षेप करनेवाला क्रोध है। और वो ताड़का के रूप में आता है।

चले जात मुनि दीन्हि देखाई ।
सुनि ताड़का क्रोध करि धाई ।।

तो, ताड़का क्रोध है। तुलसी का ये स्पष्ट अर्थ है। और 'मानस' को तीन भाग में यदि बांटे समझने के लिए तो ये पहली जो यात्रा है राम-लक्ष्मण की ये गुरुसंग है। क्रोध आता है, द्वैत आता है। लेकिन विश्वामित्र का अर्थ था कि कैसे भी राम और सीता का मिलन हो। और क्रोध इस मिलन की बाधा बन सकती थी। लेकिन-

एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा ।
दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा ।।

संकेत गुरु का था और प्रभु ने क्रोध को निर्वाण दे दिया। और फिर 'अयोध्याकांड'; एक दूसरी यात्रा शुरू हो रही है और दूसरे विभाग में मंथरा आती है। और मंथरा है लोभ। यहां तो ताड़का क्रोध के कारण सीता-राम मिले ना, लेकिन गुरुकृपा से मिल गये। लेकिन मंथरावाला प्रकरण शुरू होता है तब वो चाहती है, मिल तो गये हैं लेकिन अयोध्या में रहे ना। दोनों को वनवास दे दिया जाय। और लोभ सदैव यही करता है। मंथरा लोभ है। सीता को शंकराचार्य ने शांति कहा है। और राम को विश्राम कहा है तुलसी ने। राम है आराम, सीता है शांति। हमारी शांति और आराम मिल तो गये लेकिन मंथरा चाहती है अयोध्या में न रहे। और लोभ देशनिकाल देता है। हमारा लोभ इतना प्रवृत्ति में डालता है कि शांति नहीं प्राप्त कर सकते! हमारा लोभ हमारा संग्रह इतनी अतिशय प्रवृत्ति में हमें कंठडूब डाल देता है कि हमारा आराम छिन लिया जाता है। धन कमाना बुरी चीज़ नहीं, लोभ ठीक नहीं है। कब तक लोभ, लोभ, लोभ! और पैसों-रूपयों का ही लोभ नहीं, कभी विचारों का भी लोभ होता है। विचारों का संग्रह भी परेशान करता है, शांति नहीं लेने देता। वस्तुओं का संग्रह भी शांति नहीं लेने देता। विषयों का संग्रह भी शांति नहीं लेने देता।

लोभ के कारण शांति और आराम दोनों को निष्कासित किया जाता है। लेकिन मैं आप से एक बात पूछूं कि रामवनवास जब हुआ मंथरा-कैकेयी जो कारण बने, क्या वशिष्ठजी इस घटना को रोक नहीं सकते थे? गुरुआज्ञा तो आख़िरी हुकम है। और उस काल में शासन राजा करता था, अनुशासन तो बुद्धपुरुष करता था। बिना गुरु को पूछे कोई निर्णय नहीं लिया जाता था, ऐसा था। लेकिन यहां भी गुरु की मौन भूमिका थी कि अयोध्या में लोभ आ गया है; बेटर है कि कुछ समय के लिए यहां की शांति और आराम बनवासी हो जाय। भूमिका गुरु की है। दूसरे खंड में भी गुरु केन्द्र में है। मैं बिलकुल पक्के विश्वास के साथ कहता हूं कि वशिष्ठजी कह देते कि अवधपति, ये नहीं हो सकता। बात खतम हो जाती, साहब! राम बन नहीं जा सकते! वशिष्ठ मानी एक व्यक्ति नहीं, एक वरिष्ठ पद है। एक विशिष्ट सत्ता है। वशिष्ठ एक भरे हुए स्थान

का नाम है। बाप, यहां गुरु की मौन भूमिका है। वो चाहते हैं कि इतना बड़ा लोभ परिवार में आ गया, नगर में आ गया, राज्य में आ गया मंथरा के रूप में, कैकेयी के रूप में। अब यहां शांति और आराम रह नहीं पायेगा। उसको भेजो वन में। और अपने व्यक्तिगत जीवन का दर्शन 'मानस' के द्वारा कर रहे हैं। 'मानस' दर्पण भी है, 'मानस' समर्पण भी है। दोनों है। बड़ा जोड़ है ये दो शब्दों का। कई लोग आते हैं, 'शांति नहीं मिलती!' कौन ले गया? तुम्हारे लोभ ने शांति को वनवास दे दिया! सीधी-सी बात है।

तीसरा खंड शुरू होता है शूर्पणखा से। वहां भी एक औरत है। और शूर्पणखा काम का प्रतीक है। पहले क्रोध, बीच में लोभ, तीसरा काम। दादाजी बहुत बोलते नहीं थे। एक छोटी-सी बात कह देते, बेटा, इसको ये समझना। अब तो इनकी कृपा से विस्तार व्यासपीठ कर रही है। बीज़ तो वो था। दादा तो बिलकुल मौन रहना पसंद करते थे। बड़ी असंगता थी! मेरे साथ भी बहुत

> गुरु की चर्चा होती है, प्रेम की चर्चा होती है, सत्य की चर्चा होती है, राम की चर्चा होती है, तब हमें बहुत अच्छा लगता है। लेकिन ये अच्छा लगता है इसीलिए उसका परिचय बहुत जरूरी है। फिर किताब काम नहीं करेगी, फिर खुद को उतरना होगा। गुरु स्वयं ग्रंथ है, पढ़ना है तो उसे पढ़ो। ठीक किया हमारी शीख परंपरा ने, नानकीय परंपरा ने ग्रंथ को ही गुरु बना दिया। गुरु साक्षात् एक ग्रंथ है। उसकी कृपादृष्टि, उसके बचन ये सब उनके प्रकरण है; ये सब उनके अध्याय है। गुरु स्वयं सांस लेता ग्रंथ है।

लम्बी-चौड़ी बात नहीं हुई। अर्थ किया, सूत्र डाल दिया। ये तीन भाग में बांटना ये सब इनकी कृपा से व्यासपीठ करने जा रही है। लेकिन वो बीज़ वह था। गुरु क्या करता है? बीज़ बो देता है। तीसरा खंड शुरू होता है शूर्पणखा से। और ये काम है। शूर्पणखा चाहती है, सीता निकल जाय, उसकी जगह मैं आ जाउं। ये तीसरा खंड, जो सीता-राम को बिलग करना चाहती है। और वहां काम कर गया अगस्त्य मुनि का मंत्र। एक बुद्धपुरुष की मंत्रणा। चित्रकूट से भगवान गये और अगस्त्य ऋषि को मिले और उसने कहा कि पंचवटी में जाईये। कुंभज का मंत्र, कुंभज के साथ विचारणा, उसने वहां काम कर दिया। वहां कुंभज केन्द्र में है। तीन महापुरुष केन्द्र में है। तीन नारियां केन्द्र में है।

अब मैं आप से एक ओर बात करना चाहूंगा बाप! राम पर शूर्पणखा मोहित हुई, शूर्पणखा का क्या गुनाह? अब राम इतने सुंदर है कि कोई भी इसके पीछे पागल हो सकता था। और जो नारी राक्षसीवृत्ति की है, जिसमें तो कामना विशेष भड़कती है। तो, शूर्पणखा को राम के प्रति आकर्षण जन्मा तो उसमें राम का दोष नहीं क्या? इतने सुंदर क्यों बने तू? संसारी जीवों का क्या कुसूर है! रूप ही तो ऐसा! और इस रूपवाले राम भी तो सीता के रूप में आकर्षित हुआ है। किसका दोष निकाले? सोचो।

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा ।

सीता को पहली बार पुष्पवाटिका में मिले रामजी और कहते हैं, हे लक्ष्मण, सीता का ये रूप देखकर मेरा मन क्षोभित हो रहा है। तो संसारी को कुछ हो तो क्या दोष? लेकिन सवाल भाव का है। शूर्पणखा तो लंका की स्त्री है, शरीरवादी ये नारी है तो आकर्षण होना स्वाभाविक था लेकिन मैं एक ओर प्रश्न मेरे श्रोताओं को पूछुं कि जनकपुर तो विदेहपुर है, वहां की स्त्रियां राम पर आकर्षित नहीं हुई? सोचो, पागल हुई थी सब! लेकिन भावभेद है।

धरि धीर कहैं, चलु, देखिअ जाइ, जहाँ सजनी! रजनी रहिहैं!
कहिहै जगु पोच, न सोचु कछू, फलु लोचन आपन तौ लहिहैं।।
-कवितावली

गांव की भीलनी स्त्रियां राम को देखते एक दूसरे को कहती है, हम उनके पीछे-पीछे जाय। एक सखी ने कहा, पीछे-पीछे जायेंगे भले, हम वन में रहनेवाले हैं। लोग निंदा करेंगे। बोले, 'न सोचु कछू', कोई सोच नहीं। तुलसी को समझने के लिए तुलसी के अन्य ग्रंथों का अवलोकन अति आवश्यक है। 'मानस' में तुलसी मर्यादा के बंधन में है। बाकी तुलसी बहुत फाटल पियालानो फकीर छे! सखी कहती है, 'हम नेत्र का फल पायेंगे।' दूसरा भाव नहीं है, ध्यान देना। यहां शूर्पणखा का भाव बिलग है। यहां भीलनी क्या कहती है? नेत्र का फल प्राप्त हो। मधुर भाव है, साहब! आकर्षित तो भीलनियां भी हुई है क्योंकि राम ऐसे हैं। आकर्षित तो विदेहनगर की वैदेही महिलायें भी ओलरेडी हुई है। लेकिन भाव क्या है?

जेहिं बिरंचि रचि सीय सँवारी ।
तेहिं स्यामल बरु रचेउ बिचारी ।।

क्या कहती है? जिस ब्रह्मा ने सीता को बनाई है उसके लिए योग्य राम को भी ब्रह्मा ने बनाया है। अपनेआप को हटा देती है। और शूर्पणखा अपना स्थान लेना चाहती है! ये तीसरा मोड़ है 'मानस' का। वहां एक ऋषि की गुप्त मंत्रणा कारगत हो रही है। कुंभज ऋषि की मंत्रणा ने वहां काम किया है।

तो, तीनों भाग में ये तीनों में कोई न कोई बुद्धपुरुष काम कर रहा है। विश्वामित्र हो कि वशिष्ठ का मौन हो या कुंभज की मंत्रणा हो। क्रोध, लोभ और काम इसके निवारण के लिए, इसके अतिरेक से बचाने के लिए कोई न कोई मुनि, कोई न कोई बुद्धपुरुष जिसको वेद पंचधीर कहते हैं, ऐसे महापुरुष केन्द्र में व्यासपीठ को दिखते हैं।

अब थोड़ा कथा का क्रम ले लूं। बाप, भगवान शिव के प्रति पार्वती की अखंड निष्ठा उद्घोषित हुई कि मैं ब्याहूंगी तो शिव से ही वर्ना जनम-जनम कुंआरी रहूंगी। यहां भगवान शिव को परमात्मा आदेश देते हैं कि आप पार्वती का स्वीकार करो। और शिव के ब्याह की तैयारियां शुरू होती है। भगवान शिव ब्याहने के लिए हिमाचल प्रदेश जाते हैं। शिव-पार्वती का ब्याह होता है। हिमालय ने अपनी बेटी बो बिदा दी और शिव कैलास पधारें। काल पूरा हुआ और पार्वती ने पुत्र को जन्म दिया। कार्तिकेय का-षड्मुख का जन्म होता है। श्रद्धा और विश्वास के मिलन के बाद पुरुषार्थ जो प्रगट होता है व्यक्ति के जीवन में वो षड्मुख होता है। ये तात्त्विक अर्थ है। हम कोई भी पुरुषार्थ करे इसके पीछे श्रद्धा और विश्वास का संमिलन आवश्यक है। जहां विश्वास और श्रद्धा की कमी है, वो पुरुषार्थ कभी षड्मुख नहीं होता, एक मुख होता है। षड्मुख पुरुषार्थ आध्यात्मिक जगत का सत्य है। षड्मुख पुरुषार्थ के नाम है, एक जप। जप करो तो उसके भीतर श्रद्धा और विश्वास का संम्मिलन जरूरी है। षड्मुख पुरुषार्थ का दूसरा सूत्र है तप। तप में भी विश्वास आवश्यक है। षड्मुख का तीसरा मुख है व्रत। कोई भी व्रत, सब से श्रेष्ठ व्रत है मेरी दृष्टि में मौनव्रत। चौथा, ध्यान भी एक पुरुषार्थ है। पांचवां पुरुषार्थ माना गया है तीर्थाटन। आप कथा में आये हैं तो तत्त्वत: आप कम्बोडिया नहीं आये हैं, तीर्थ में आये हैं।

जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहिं ।
तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं ।।

हम तीर्थ में आये हैं। लेकिन श्रद्धा और विश्वास न हो तो तीर्थाटन प्रवास हो जाएगा, यात्रा नहीं होगी। पांचवां है तीर्थाटन। और फिर, 'श्रेय' और 'प्रेय' दो शब्द है हमारे यहां। प्रेय मानी सांसारिक उपलब्धियों के लिए किया गया पुरुषार्थ। और श्रेय मानी परम कल्याण के लिए किया गया पुरुषार्थ। श्रेय और प्रेय ये दोनों पुरुषार्थ ये छठ्ठा माना गया। ये ट्विन्स है। श्रद्धा और विश्वास के बिना वो भी संपूर्ण नहीं होता। तो, कार्तिकेय का, एक परम पुरुषार्थ का प्रागट्य होता है श्रद्धा और विश्वास के कारण। और वहां तुलसीदासजी शुभविवाह का आशीर्वाद हम सब को प्रदान करते हैं-

यह उमा संभु बिबाहु जे नर नारि कहहिं जे गावहीं ।
कल्यान काज बिबाह मंगल सर्बदा सुखु पावहीं ।।

मानस-विष्णु भगवान

॥ ७ ॥

मंदिर की बड़ी महिमा है, लेकिन परमात्मा केवल मंदिर में ही नहीं है

आज मेरे पास आप श्रावक भाई-बहनों से बहुत-सी जिज्ञासायें है। एक तो चुटकिला है!

मुस्कुराते रहो गुनगुनाते रहो,
जीवन संगीत है स्वर सजाते रहो...

जीने के कुछ सामान है कि आदमी मुस्कुराता रहे, आदमी प्रसन्न रहे, आदमी खुश रहे। मैं क्या बांटता हूं? खुशियां बांटता हूं। मेरा क्या है? सत्य तो मेरा व्यक्तिगत है कि मैं कितना निभा पाउं। लेकिन आप को देने के लिए मेरे पास प्रेम ओर करुणा के सिवा कुछ नहीं। क्या करूं?

मेरा समाज, मेरा राष्ट्र, मेरी दुनिया, मेरी ये खूबसूरत धरती मेरा है और याद रखना, आप के साथ व्यासपीठ है। डु नोट फिल लोनली एनी टाईम। मेरे प्यारे श्रोता भाई-बहन, मेरी ममता के भाजन आप सब लोग है। डु नोट फिल एनी टाईम लोनली, बीकोज़ एन्टायर युनिवर्स इन साईड यू। पूरा अस्तित्व जो व्यासपीठ है; पूरा अस्तित्व जो हरिनाम है। कभी अकेले अपने आप मत समझो। हरि हमारे साथ है, 'मानस' हमारे साथ है, 'भगवद् गीता' हमारे साथ है। पवित्र कुर्आन है जिसके पास; किसी के पास पवित्र बाईबल है, धम्मपद है, आगम है, गुरुग्रंथसाहब है। डु नोट फिल लोनली।

तो बाप, मेरे पास बहुत-सी जिज्ञासायें है। 'बापू, जहां भी असंगता की बात आती है, कमल का उदाहरण दिया जाता है। कमल कैसे असंग है? कृपया समझायें क्योंकि जब कमल के फूल को देखते हैं तो लगता है कि भले ही नाम से ही सही पर वो कीचड़ और पानी से जुड़ा हुआ है। फिर असंग कैसे?' कमल असंग है इसका मतलब कमल का फूल। उसकी जड़ को हम कमल नहीं कहते। उसकी दांडी को भी हम कमल नहीं कहते। जो खिल जाता है उसको कमल कहते हैं। उसकी जड़ें अवश्य कीचड़ में है। उसका जो शरीर है वो पानी में है। लेकिन जब खिल जाता है तो कमल बनता है। मुखरित होता है तब वो बिलकुल असंग होता है।'संग' मानी आसक्ति, संस्कृत में। हम सब लुब्ध है, आसक्त है, संसार का कीचड़ या जो कहो। सब के बीच में हम को रहना पड़ता है। लेकिन सत्संग करते-करते हम यदि खिल जायें; खुल जाये तो हम असंग है। हम ऐसे उपर उठ जाये ये इसीलिए, बाकी तो सब का जनम कीचड़ है मूल। एक राम के सिवा सब का मूल दुःख है। 'राम जनम सुखमूल।' एक राम की जड़ें ही सुख है। बाकी हम सब ऐसे ही पैदा हुए हैं। ऐसे सब के बीच में रहना पड़ता है। कहीं अच्छा लगे न लगे, कहीं सोच के अनुकूल हो न हो, जीना पड़ता है। लेकिन सत्संग इसीलिए है मेरे भाई-बहन कि इससे हम उपर उठते-उठते जब खिल जाये, खुल जायें। यही जाग्रतता है। आज मेरे पास एक शे'र भी है।

उसको साकी मैं कैसे रिंद समझूं,
पीने के बाद भी जो होश की बातें करे।

हे साकी, मैं उसको पीनेवाला पिअक्कड कैसे समझूं? खिलने के बाद मुस्कुराये। भले ही कीचड़ में हो, भले शराबघर में हो। लेकिन जो होश न गंवाये तो उसको मैं रिंद कैसे कहूं? ये तो कलंदर है। सिकंदर इसके पीछे कुछ नहीं! ये तो महापुरुष है। हमारी तकलीफ़ क्या है कि हम कहते हैं, हम महात्मा कैसे बन सकते हैं? कुछ जीना सीख लो; महात्मा बनने की जरूरत नहीं, हो जाओगे। हम कहते हैं, हम पयगंबर तो नहीं बन सकते हैं। पयगंबर बनने की जरूरत नहीं, पयगंबर के मार्ग पर चलोगे, पयगंबर हो जाओगे। मसीहा बनने की जरूरत नहीं, मसीहा हम हो जायेंगे हम खिलेंगे तब। और खिलने की बाधायें है हमारे राग-द्वेष। खिलने में बाधा है हमारे आग्रह। खिलने में बाधा है हमारा चैतसिक संग्रहित संस्कार। मैंने कल भी कहा कि हम सत्संग में बहुत अच्छे दिखते हैं। फिर हम क्यों...! ये आलोचना नहीं थी। फिर हम अपना जो जिन्स होता है, अपनी मूल जो प्रकृति होती है, उसमें चले जाते हैं। इसीलिए-

जब बहु काल करिअ सतसंगा ।

तुलसी ने प्रेक्टिकल सूत्र दिया है। और जागरण जब भी हो। एक जीवन के बाद नहीं, पांच जीवन के बाद भी हो, तो भी सस्ता सौदा है।

जनम जनम मुनि जतनु कराहीं ।

जन्मजन्मांतर की यात्रा के बाद भी कोई एक प्राप्त करता है। 'भगवद् गीता' कहती है, अनेक जन्मों के बाद कोई ज्ञान को उपलब्ध होता है। आदमी थोड़ा खिले, थोड़ा खुले वो अपने आप थोड़ा असंग होता जाएगा। कभी-कभी मुझे ये भी होता है। मंदिर का मैं चाहक हूं। जहां न हो वहां क्षमता के अनुसार सात्त्विक मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वार, या तो कुछ भी हो। उसने बहुत अच्छे काम किये लेकिन एक सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो ये भी नहीं हुआ कि उसने एक ऐसा सूक्ष्म संदेश जो नहीं होना चाहिए था, ऐसा एक संदेश दिया कि इश्वर यहां ही है, तुम्हारे घर में नहीं है! ये घाटे का सौदा है। चलो, अब घर से निकले, अब मंदिर जाके दर्शन करें! इसका मतलब हम कुबूल कर रहे हैं कि वो अंदर नहीं है! मंदिर आवकारदायक है। मंदिर मुझे अच्छे लगते हैं। मंदिर में बैठा देव प्यारा लगता है लेकिन ये सूक्ष्म संदेश कहीं ये हमारे दिल में घर न कर जाय कि वहीं ही परमात्मा है। हमारे अंदर पूरा विश्व है। तुम अपने भीतर का संग करो; डु नोट फिल लोनली। बुद्धपुरुष और हमारे बीच में देशांतर और कालांतर नहीं होता। वो निरंतर हमारे साथ होता है। मैं वो मेरी प्यारी पंक्तिओं गाता रहता हूं-

तुम मेरे पास होते हो, कोई दूसरा नहीं होता....

तो बाप, मंदिर की महिमा बड़ी है। दुनिया का एक अर्थ में बहुत बड़ा मंदिर यहां बिराजमान है। उसकी महिमा है। पुकार रहे हैं हमें कि आओ, आओ, लेकिन घर में भी मैं हूं वो भूलकर मत आओ। क्या मुस्कुराता हुआ बच्चा घर में परमात्मा का रूप नहीं है? बच्चा परमात्मा का पर्याय है। यूं कहने दो मेरी बोली में, कि बच्चा परमात्मा का ट्रान्सलेशन है, भाषांतर है। इसलिए जिसस क्राईस्ट ने कभी कहा था कि जो बच्चे जैसा होगा वो मेरे पिता के प्रदेश में प्रवेश कर पायेगा। इसीलिए हमारी पूरी वल्लभ परंपरा बालकृष्ण की पूजा करती है। क्या भगवान वल्लभाचार्य केवल हवेली में पूर देंगे? नहीं। इस आचार्यों की दिव्य दृष्टि को समझें हम। क्यों भगवान कृष्ण मथुरा छोड़कर गोकुल जाने के लिए जनमते ही निर्णय करते हैं? वहां यमुना थी। यमुना के दो कुल थे। एक कुल पर कंस था, दूसरे कुल पर नंद था। एक कुल पर आक्रमकता थी, दूसरे कुल पर स्वीकार था। एक कुल पर केवल रोष-द्वेष था, दूसरे कुल पर प्रेम और आंसू था। इसीलिए प्रगट होते ही गोविंद ने संकेत किया, मुझे यहां से लिये चलो। रात हो तो रात! जमुना भरपूर हो तो कोई चिंता नहीं! नंदबाबा, आप की टोपली में तेज होगा तो प्रकृति मारग दे देगी।

तो, कृष्ण के जीवन में समस्या थी वो राम के जीवन में नहीं थी साहब! राम का जन्म सरजू के तट पर, कृष्ण का यमुना के तट पर। भेद इतना ही है राम के

सामने दूसरा उस समय कोई किनारा नहीं था, जहां आक्रमकता हो। इसीलिए प्रभु राम को जन्मस्थल छोड़कर कहीं जाने की जरूरत नहीं पड़ी। कृष्ण को जाने की जरूरत पड़ी; मुझे भाव में ले चलो, मुझे प्रेम में ले चलो। जन्मा भले यहां, उत्सव तो वहां होगा; रास तो वहां होगा। सत्संग ये आंखें खोल देता है। अपने घर में शक्ति थी लेकिन मयना सोई थी, वो दुर्गा को पहचान न पाई। नारद ने जाकर समझाया कि तू जिसको बेटी कहती है वो तेरी भी माँ है! हमारे घर में परमात्मा है। हम अपने लिए स्वयं पूज्य है, दूसरों के लिए नहीं। ये शरीर की निंदा मत करो, हम खुद के लिए पूज्य है। यस ये, 'बड़े भाग मानुष तनु पावा।' हम जरूर कीचड़ से पैदा हुए है; जरूर सब के बीच में रहते हैं, लेकिन खिल गये हैं। अब हम असंग है। अब हम कमल है। बहुत प्यारा संदेश है कमल का इसीलिए हमारे परमात्मा की आंखों, हाथों इन सब के साथ कमल जोड़ दिया है। ये बहुत प्यारा मेसेज है।

'क्या सिद्धपुरुष नाराज हो सकते हैं?' ऐसे प्रश्न मेरे पास बहुत बार आये हैं। मैंने दो-टूक जवाब दे दिया है, जो नाराज हो वो सिद्धपुरुष हो ही नहीं सकता। शायद सिद्धपुरुष हो भी, लेकिन शुद्धपुरुष नहीं हो सकता। सिद्ध हो सकता है चलो, माना लेकिन नाराज हो वो शुद्ध नहीं हो सकता। नाराजगी कैसी? ये क्या है? गुरु तो क्षमा का सिंधु है। 'कृपा सिंधु नररूप हरि' है ये। करुणानिधि है ये। मैं प्रार्थना करूं, कोई आप को हुकम न करूं लेकिन आप का दिल माने तो एक गांठ बना लो मन में कि बुद्धपुरुष वो है जो कभी नाराज नहीं हो सकता। जिसको मेरी व्यासपीठ सतत बुद्धपुरुष कहा करती है उसमें ये व्यवस्था ही नहीं है नाराजगी की! आप समझ लीजिए बुद्धपुरुष वो है, जिसको आप किसी भी प्रकार से प्रसन्न नहीं कर सकते और किसी भी प्रकार से आप उसको नाराज नहीं कर सकते। जिसकी नौकरी में अस्तित्व खड़ा रहता है! हम क्या दे सकते हैं? सोचो तो! ध्यान देना, हमारे पदार्थों का सदुपयोग कराने के लिए कृपालु हमें कभी-कभी इन सेवा का मौका देता है। वर्ना ये तुम्हारें साधन किसी गलत दिशा में चले जायेंगे तो अशुद्धि हो जाएगी; साधनशुद्धि नहीं रहेगी और परिणामस्वरूप दिल भी कचरे से भर जाएगा! पूछा है, 'बुद्धपुरुष नाराज होता है?' मेरा जवाब यही है कि बुद्धपुरुष कभी नाराज नहीं हो सकता छोटी-छोटी बातों में! मैं फिर एक बार यही वाक्य दोहराउं कि बुद्धपुरुष के नाराज होने और प्रसन्न होने की व्यवस्था ही नहीं है। हम न प्रसन्न कर सकते हैं, न उसको नाराज कर सकते हैं। नाराज हुए वो और प्रसन्न हुए वो ये हमारे चैतसिक प्रतिफलन है। हमारा मानसिक प्रतिफलन है।

आदमी गज़ब का था ओशो! मैं उसके निवास पर गया पूना में। क्या बादशाहत थी! कुछ अपनी कलंदरी होती है, साहब! दुनिया कुछ भी कहे, किसीकी सुनी नहीं इस आदमी ने! खेर, उसकी सब बातें कुबूल हो, न हो ये बात और है लेकिन शुभ जहां अच्छा लगे वो लेने में परहेज़ क्यों? यद्यपि वो खुद सब्जेक्ट ऐसे अच्छा नहीं ले पाये भी। लेते तो मुझे ज्यादा अच्छा लगता। और तुलसी से नहीं ले पाये वो। थोड़ा 'रामचरित मानस' खोलते तो कुछ पा जाते। हां, एक टुकड़ा उसने जरूर पसंद किया था, 'स्वान्तः सुखाय।' वहां तो रुकना ही पड़ेगा दुनिया को!

यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं।

एक महाकवि, एक सुकवि, एक अनादि कवि ने बहुत दुर्लभ 'रामायण' का सर्जन किया था। तुलसी ने कहा, ये सब दुर्लभ था उनके लिए लेकिन मेरा प्रवेश उसमें नहीं था, इसीलिए-

मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमःशान्तये।

मेरे भीतर के तम को, अंधेरे को मिटाने के लिए-

भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम् ।

एक दुर्लभ; संस्कृत में, देवभाषा में लिखा है। तुलसीदासजी संस्कृत नहीं जानते थे साहब? अद्भुत जानते थे! उस समय तो बहुत विरोध भी हुआ था,

तुलसी ने ग्राम्यभाषा में ग्रंथ रचना की! एक निकले अद्वैत सिद्धांत के परम आचार्य, आचार्यचरण मधुसूदन सरस्वती महाराज, जिसने तुलसी का 'रामचरित मानस' देखकर अपने हस्ताक्षर किये थे कि आनंद कानन का ये तुलसी जंगमतरु है, जिस पर रामरूपी भंवरा गुंजारव कर रहा है। इतना बड़ा प्रेमपत्र आचार्यचरण ने प्रदान किया था! पंडितों को परेशानी होती थी, क्योंकि तुलसी की सरल बोली में सब समझने लगे कि राम तत्त्व कया है? वो तो चाहते थे कि इतनी क्लिष्ट भाषा में रखे कि राम समझने में न आये! हमारा धंधा चले! संस्कृत में एक कहावत है, 'मूर्खो बुद्धस्य जीविकः।' मूर्खो ये बुद्धिमानों की आजीविका है। बुद्ध एकदम पालि में उतर आये। कोई साधुकडी में उतर आये। मेरे तुलसी बिलकुल भोजपुरी अवधि बिलकुल सरल हिन्दी में उतर आये।

तो, मेरे कहने का मतलब हम सब का अनुभव है, किसी व्यक्ति के प्रति हमारा अकारण द्वेष हो जाता है ना फिर वो लाख अच्छा हो ना फिर भी ग्रंथि नहीं टूटती! मैं ये नहीं कहता कि 'रामचरित मानस' में सब सराहनीय है लेकिन यदि हम आप से शुभ-शुभ लेते हैं तो मेरा निमंत्रण है, 'मानस' से भी कुछ-कुछ तो शुभ-शुभ लो! किमती से किमती गाडी आप के पास हो साहब लेकिन आप की कमर में कुछ मणका इधर-उधर हुआ हो तो किमती से किमती कार में आप सुख नहीं महसूस कर सकते हैं। हमारी कुछ ग्रंथियां, इतना प्यारा मानव देह मिलने के बाद भी हमें सुख नहीं लेने देती है! कथा है ग्रंथिभेदन का प्रयोग, जो हमें निर्ग्रंथ करे। ग्रंथ काम करता है तत्त्वतः निर्ग्रंथ होने का। 'भगवद्गीता' कहती है कि समंदर मिल जाये तब डबरा छोड़ दो। डबरे में मच्छर होते हैं, समंदर में मगरमच्छ होते हैं! बड़ी-बड़ी महिमावंत चेतनाएं उसमें होती है। हमारी छोटी-छोटी ग्रंथियां हमें परेशान कर रही है असंग होने में। फिर आगे बढ़ूं तो गंगासती का एक पद किसीने मुझे दिया है।

मेदानमां जेणे मोरचो पानबाई,
जेणे पकड्यो वचननो विश्वास।
चौद लोकमां कोईथी बीवे नहीं,
थई बेठो छे सद्गुरुनो दास रे।

आप देखो, जिंदगी में उदास न होना हो तो किसीका दास हो जाये। और दास होना एक शर्त के साथ, कभी-कभी नहीं होना! भगतबापु कागे कीधुं-

'काम पड़े त्यारे केजे, बेनडी कायम के'तो वातो रे जी,
वेणलंपट तारी वाणी सुणीने, फ़ोगट जीव फुलातो।
सगी बेनडी सुभद्रानो वाळ न वांको थातो रे जी,
जादवराय! आपणे जूनो नातो रे...जी,

दास तो होते हैं। जरूरत होती है तो, 'हम आप के सेवक है, हम आप के किंकर हैं!' कई लोग तो कहते हैं, दासानुदास है! मैं एक प्रार्थना करूं, जहां से हो, सदादास हो। समझ में आई न बात? दास होना है तो सदादास रहो।

गंगासती एम बोलियां पानबाई,
बचन ना समज्या ई नरके जाय...

गंगासती नरकनी वात न करे! 'नरके' मानी आनंद ले न सके। मैं नरकपक्षी हूं ही नहीं। जहां स्वर्ग की परवा नहीं तो नरक में क्यों फंसे हम? नरक क्या है? नरक मानी? दुर्जन का संग। नरक मानी समस्त उपलब्धियां होने के बावजूद भी ये जीव उदास रहे, तो यही नरक है! किसी की उपेक्षा करो वो नरक है। किसीके प्रति नफ़रत-द्वेष रखो ये नरक है। कौन- सा स्वर्ग? कौन-सा नरक? तुलसी तो स्वर्ग की व्याख्या करते हुए कहते हैं-

संत संग अपबर्ग कर कामी भव कर पंथ ।

साधु का संग वो अपवर्ग कहा है। स्वर्ग से भी ऊंचा है।

आगे का प्रश्न, ''आपने परसों 'योगवासिष्ठय' से विवेकजनित विरक्ति की बात की एवं कल बुद्धपुरुषों के आश्रय की बात की। 'मानस' में गोस्वामीजी नवधा भक्ति के प्रकरण से पहले 'प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।' यानी बुद्धपुरुषों का संग और उसमें कोई शर्त या कन्डिशन नहीं रखते हैं, बाकी आठ भक्तिओं मे शर्त है।

तो क्या बुद्धपुरुषों का संग हरिकथा से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है? यह जानने की जिज्ञासा है।'' बुद्धपुरुषों का संग हरिकथा से भी महत्त्वपूर्ण है; यस, यस, यस। क्योंकि बिना बुद्धपुरुष हमें हरिकथा कौन सुनाएगा? कोई तो चाहिए ना? तुलसी ना होते तो हम क्या करते, बोलो? शुकदेव न होते तो? कितने-कितने महापुरुष है? ये कोई न कोई चाहिए हम जैसों को। बिंदुजी महाराज न होते तो? ऐसे कोई मिल जाते हैं तभी तो हरिकथा मिलती है। कपीन्द्रजी, पंडितजी रामकिंकरजी महाराज, अरे डोंगरेजी महाराज, कृष्णशंकरदादा। ऐसे-ऐसे महापुरुष मिले तो हमें हरिकथा मिली। वर्ना टेक्स्ट तो हमारे सब के घर में है। खोलेगा कौन? इनमें तो बहुत रहस्य है, कौन खोलेगा? और शायद हम परिपक्व न हो तो ग्रंथ का मनमाना गलत मेसेज़ भी दे सकते है! कई धर्मग्रंथ के बारे में ऐसे गलत मेसेज गये हैं दुनिया में और युद्ध को निमंत्रण दिया गया है! मूल पुरुष ने ऐसे मेसेज़ कभी सोचे ही नहीं थे! योग्य महापुरुष के पास से हरिकथा मिलती है। तो, आप का जो प्रश्न है, मेरा व्यक्तिगत जवाब यही है कि हरिकथा से भी बुद्धपुरुष महत्वपूर्ण है, क्योंकि ऐसा मिलेगा तो वहां हरिकथा के सिवा कुछ होगा ही नहीं। वहां किसीकी निंदा, किसीका द्वेष नहीं होगा। भगवद्चर्चा ही होगी ओर क्या होगा वहां? मेरी बात सुने तो मुझे त्रिभुवनदादा न होते तो मैं क्या करता? मेरे लिए कथा से पहले वो है। तभी तो कथा मिली। और कथा मिली तो मौज़ कर रहे हैं!

'बापू, लोभ-मंथरा, उसको तो छोड़ दिया गया। 'भरत दयानिधि दिन्हीं छुडाई।' क्रोध-ताड़का, उसको तो मार दिया गया, मुक्ति दे दी। शूर्पणखा, उसके नाक-कान काटे गये। ये रोग की सब की अलग-अलग औषधि क्यों?'' जैसा रोग; सीधी-सी बात है। लोभ की औषधि बिलग होती है। क्रोध की बिलग होती है और काम की बिलग होती है, तो तीनों के साथ बिलग-बिलग उसका वो कर दिया है। एक समान औषधि कैसे हो सकती है? तो, आज बहुत जिज्ञासायें थी। तो बाप, ये आप की जिज्ञासाओं के कारण आप के साथ बात करने का मुझे मौका मिल गया, शुक्रिया।

भगवान शिव का ब्याह हुआ। एक दिन शिव कैलास के शिखर पर निज आसन, सहज आसन लगाकर बैठे हैं। पार्वती प्रश्न करती हैं, रामतत्त्व क्या है? राम की कथा सुनाकर मेरे संदेह का निराकरण करो। और भगवान शंकर भगवान राम की कथा कहने के लिए तैयार होते हैं। भगवान की कथा कहलवाने के लिए निमित्त जो बन जाता है उसको तुलसी ने धन्यवाद दिया है। राम का जन्म क्यों हुआ देवी? उसके तो कई कारण है और कोई कारण इदमित्थ नहीं है कि ऐसा ही कारण। दो-चार अवतार का कारण बता दूं। एक तो जय-विजय, विष्णु के द्वारपाळ। सनतकुमारों का श्राप प्राप्त किया और उसको राम

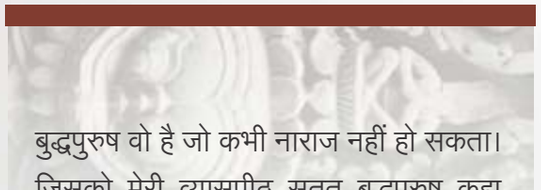

बुद्धपुरुष वो है जो कभी नाराज नहीं हो सकता। जिसको मेरी व्यासपीठ सतत बुद्धपुरुष कहा करती है उसमें ये व्यवस्था ही नहीं है नाराजगी की! आप समझ लीजिए, बुद्धपुरुष वो है, जिसको आप किसी भी प्रकार से प्रसन्न नहीं कर सकते और किसी भी प्रकार से आप उसको नाराज नहीं कर सकते। जिसकी नौकरी में अस्तित्व खड़ा रहता है! हम क्या दे सकते हैं? सोचो तो! ध्यान देना, हमारे पदार्थों का सदुपयोग कराने के लिए कृपालु हमें कभी–कभी इन सेवा का मौका देता है। वर्ना ये तुम्हारें साधन किसी गलत दिशा में चले जायेंगे तो अशुद्धि हो जाएगी; साधनशुद्धि नहीं रहेगी और परिणामस्वरूप दिल भी कचरे से भर जाएगा!

अवतार लेना पड़ा। दूसरा कारण भगवान विष्णु ने सती वृंदा से छल किया। और वृंदा के श्राप के कारण विष्णु को राम अवतार लेना पड़ा। तीसरा कारण, नारद ने एक बार विष्णु को श्राप दिया। और इसी कारण ठाकुर को रामअवतार लेना पड़ा। और चौथा कारण मनु और शतरूपा का। जहां आशीर्वाद के रूप में प्रभु ने जो वचन दिया था उसके कारण उसको आना पड़ा। पांचवां और अंतिम कारण राजा प्रतापभानु कालांतर में रावण हुआ, अरिमर्दन कुंभकर्ण हुआ, धर्मरुचि नाम का उसका मंत्री दूसरी माता के पेट से जनम लेकर विभीषण बना। तीनों भाईओं ने कड़ी तपस्या करके दुर्गम और दुर्लभ वरदान प्राप्त किये।

मैं हर वक्त कहता हूं कि 'मानस' में राम के अवतार से पहले रावण के अवतार की कथा भुसुंडि ने सुनाई। रावण बहुत शक्तिसंपन्न हुआ और पूरी दुनिया उससे त्रस्त हो गई। पृथ्वी ने गाय का रूप लिया और ऋषिमुनिओं के पास जाकर रो पड़ी कि परद्रोहीओं का बोज़ मुझे सता रहा है, कुछ करो। पितामह ब्रह्मा के पास सब गये। और सब ने मिलकर ब्रह्मा की अगवानी में स्तुति शुरू की। देववाणी हुई, 'डरो मत।' भगवान ने कहा, 'मैं अंशों के साथ प्रगट होउंगा।'

महाराज अवधपति अयोध्या के चक्रवर्ती सम्राट। रघुकुल का शासन। धर्मधुरंधर है, गुणनिधि है, ज्ञानी है, भक्त है, सब कुछ है। कौशल्यादि प्रिय रानियां है। सब का आचरण पवित्र है। लेकिन एक पीड़ा थी, पुत्र नहीं है। और अपनी वेदना कहां गाई जाय उसके लिए जीवन में कोई एक आस्था, एक मुकाम नक्की करना कि जहां जाकर हम कुछ कह सके, दिल खोल के रो सके। और ऐसे आदमी के पास कहना कि जो हमारे लिए जीता हो। शायर कहता है-

बड़ी बेवफा बड़ी बेरहम है ये मेरी सांसे,
रहती है मेरे साथ चलती है उसके लिए!

बुद्धपुरुष की सांसे रहती तो उनके पास है लेकिन वो हमारे जीवन के लिए वो प्राणवायु लेता है, छोड़ता है।

गुर गृह गयउ तुरत महिपाला ।

कहा कि गुरुदेव, मेरे जीवन में पुत्रसुख नहीं है? शृंगी को बुलाया। पुत्रकामेष्ठि यज्ञ करवाया। आख़िरी आहुति प्रेमसहित डाली गई। यज्ञ महाराज अग्नि का रूप लेकर प्रसाद की खीर लेकर बाहर आये। प्रसाद वशिष्ठजी ने दशरथ को दिया। और दशरथजी ने अपनी रानीओं को बुलाकर यज्ञ खीर बांट दी। सब रानियां सगर्भा हुई है। परमात्मा स्वयं कौशल्या के गर्भ में उतर आये हैं। मंगलमय सगुन होने लगे हैं। काल बीता है। प्रभु प्रगट होनी की तैयारी हो गई है। मधुमास है, नौमि तिथि, त्रेतायुग, शुक्ल पक्ष, मध्याह्न का समय है। न शैत्य है, न गर्मी है। आकाश के देवता, पृथ्वी के ब्राह्मण देवता और पाताल के नागदेवता स्तुति कर रहे हैं। यहां तुलसीजी कहते हैं, पूरे जगत में जिसका निवास है और पूरा जगत जिसमें निवास करता है ऐसा ब्रह्म, परमात्मा, ईश्वर, भगवान, परमतत्त्व जो कहना चाहो, कहो; माँ कौशल्या के भवन में प्रकाशपुंज फैलाने लगा। इतने में तो चतुर्भुजरूप में महाविष्णु, परमविष्णु जो कहो ये परमतत्त्व माँ के सन्मुख प्रगट होता है और तुलसी की लेखनी गा उठी-

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी।।

और धन्य है भारतकी माँ जो इश्वर को मानव कैसे हुआ जाय वो सीखा रही है। और गोस्वामीजी कहते हैं, परमात्मा चतुर्भुज से दो भुज हो गये। अभी जन्म लिया हो ऐसा छोटा बालक बन गये है प्रभु। बालकरूप में प्रभु माँ के अंक में आकर रोने लगे। महाराज दशरथजी के कान पर बात आई कि पुत्रजन्म हुआ! और महाराज दशरथजी पुत्रजन्म के ब्रह्मानंद में डूब गये, परमानंद में डूबे राजा ने गुरु को बुलाया। और रामजन्म का उत्सव शुरू होता है। कम्बोडिया की इस विष्णुलोकभूमि पर आप सब को इस रामकथा में हुए रामजनम की बधाई हो।

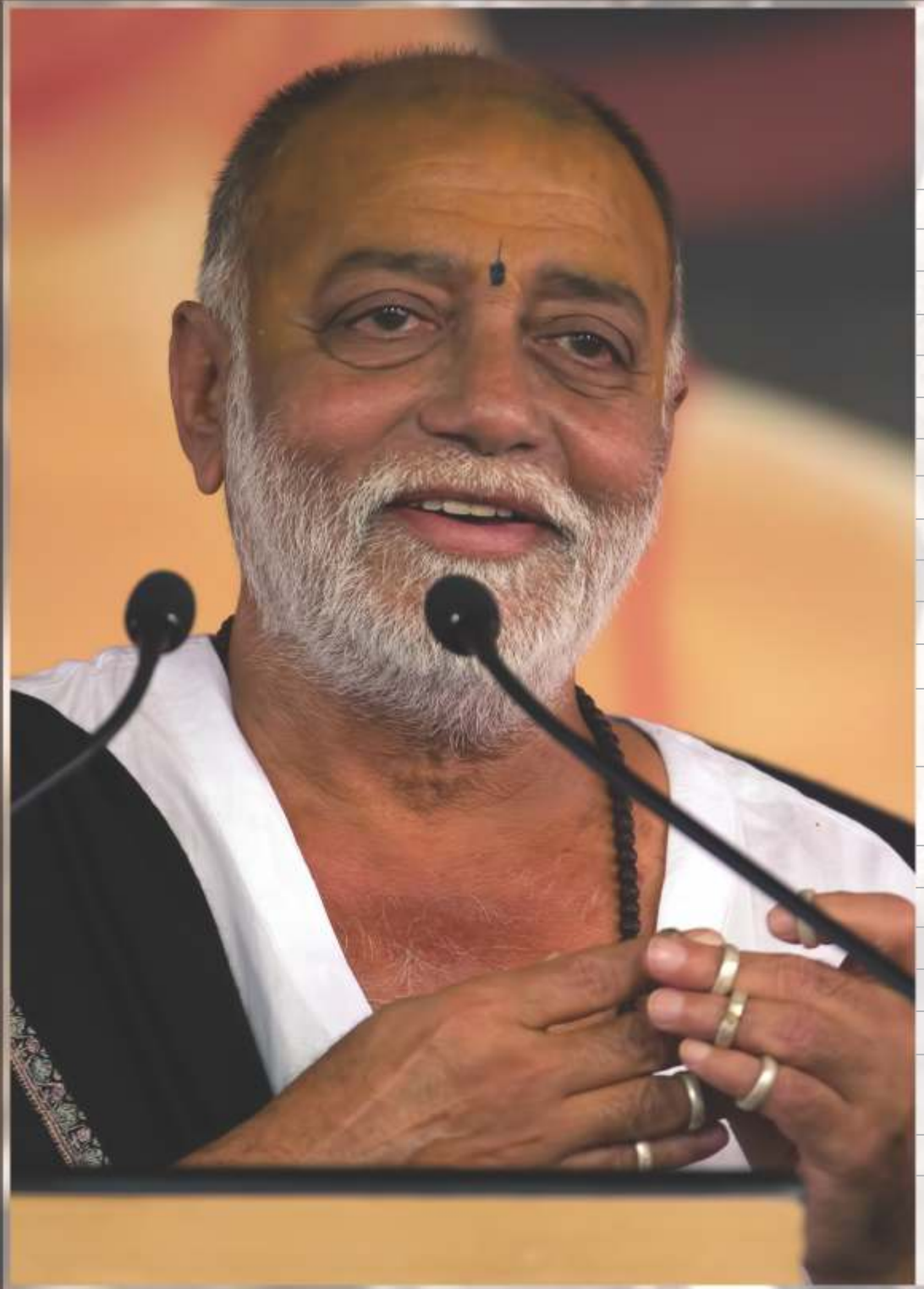

कथा - दर्शन

इक्कीसवीं सदी का संपूर्ण शास्त्र 'रामचरित मानस' है।

'मानस' दर्पण भी है, 'मानस' समर्पण भी है।

भगवान की मानवीय लीला और ईश्वरीय लीला का संगम है 'मानस।'

रामकथा प्रभाव पर काम नहीं करती, स्वभाव पर काम करती है।

कथा है ग्रंथिभेदन का प्रयोग, जो हमें निर्ग्रंथ करे।

कथा ठीक से सुननी हो तो सब भूलकर आओ।

श्रोता तभी सार्थक है जब वो भी अंदर से बोलता है;
और वक्ता तभी सार्थक है जब वो अंदर से सुनता हो।

गुरु स्वयं ग्रंथ है, पढ़ना है तो उसे पढ़ो।

गुरु क्या करता है? बीज़ बो देता है।

गुरु तो क्षमा का सिंधु है।

नितांत पावित्र्य का नाम है बुद्धपुरुष।

बुद्धपुरुष और हमारे बीच में देशांतर और कालांतर नहीं होता;
वो निरंतर हमारे साथ होता है।

बुद्धपुरुष वो है, जिसको आप किसी भी प्रकार से प्रसन्न नहीं कर सकते
और किसी भी प्रकार से नाराज नहीं कर सकते।

जप करो तो उसके भीतर श्रद्धा और विश्वास का सम्मिलन जरूरी है।

हमारी जीवन की छोटी-बड़ी ग्रंथियां हमारी बाधा है।

अहंकारी आदमी मूढ़ होता है।

धन कमाना बुरी चीज़ नहीं, लोभ ठीक नहीं है।

लोभ के कारण शांति और आराम दोनों को निष्कासित किया जाता है।

सुख भोगनेवालों को दु:ख के लिए तैयार रहना चाहिए।
सन्मान पानेवालों को तिरस्कार की तैयारी रखनी चाहिए।

बच्चा परमात्मा का पर्याय है। बच्चा परमात्मा का ट्रान्सलेसन है, भाषांतर है।

अणु जगत का संहार कर सकता है, भक्त का आंसू
परमात्मा का सर्जन कर सकता है।

मानस-विष्णु भगवान

॥ ६ ॥

बुद्धपुरुष परमात्मा से भी ज्यादा पवित्र होता है

'मानस-बिष्नु भगवान', जिसकी हम सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा संवाद के रूप में करते हैं। आज की कथा का आरंभ एक वेदमंत्र से किया जाय। ये वेदमंत्र मैं लिख के आया हूं। जो मेरी व्यासपीठ की एक प्रणाली मैंने पैदा कर ली है कि मैं बोलूं, आप बोले, मैं बोलूं, आप बोले। प्लीज़, उसको ठीक से सुने, फिर उच्चारें भी। और फिर साथ में हम समझने की गुरुकृपा से कोशिश करें।

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ।।

-ऋग्वेद(६/४४/१४)

बड़ा महिमावंत ये मंत्र है। उसका शब्दशः अर्थ करना कठिन है। क्योंकि शब्द की भी सीमा है और अर्थ की भी सीमा है। शब्द जहां से पैदा होता है वो तत्त्वतः असीम है। आकाश ये असीम है। लेकिन जहां से शब्द प्रसव होता है वो शब्द सीमित है। इसीलिए प्रत्येक वेदमंत्र का शब्दशः अर्थ निकालना जरा मुश्किल है। अर्थ बहुत होते हुए भी कोई न कोई सीमा है। वेद मंत्र का अनुभव किया जाय। वेदमंत्र बोलने के बाद मौन में समझा जाय। तभी कोई अर्थ की जरूरत नहीं पड़ती ऐसा मेरा खयाल है। तो वेद की शब्दशः व्याख्या करना अपनी क्षमता कहां? लेकिन मेरा अनुभव कहूं तो मुझे लगता है कि ये महसूसी का विषय है। उसका सार मात्र इतना है, जो जागा है उसका स्मरण वो करता है।

जगु जप राम रामु जप जेही ।

भरत जाग गये थे 'मानस' में। जगत राम को जपते थे और राम चित्रकूट की कुटियां में 'भरत, भरत, भरत...!' कबीर जाग गये थे इसीलिए जागनेवालों ने उद्घोषणा की कि-

माला जपू न कर जपू, जिह्वा जपू न राम ।
सुमिरन मेरा हरि करे मैं पावा विश्राम ।

जो जाग गया उसका स्मरण वो करता है। जो जाग जाता है उसके पास सामवेद की ऋचाएं दौड़ती-दौड़ती जाती है। समंदर के पास जैसे नदियां जाती है वैसे वेदों की ऋचाएं जाग्रत के पास नदी की तरह दौड़कर जाती है। अब जो जाग गया उसका स्मरण अस्तित्व करता है, ये हो गया भक्ति की पराकाष्ठा। और जो जाग गया उसके पास सामवेद की ऋचाएं जाती है, वो हो गया ज्ञान कि वहां अपने आप ऋचाएं आ जाती है।

बिनु प्रयास नहीं साधन खेदा।

भुशुंडि के गुरु ने कहा, जा तुझे सब का भेद मालूम हो जाएगा; तुझे कोई कवायत नहीं करनी पड़ेगी। भगवद् कृपा से सभी शास्त्र के रहस्य अपने आप तुझमें खूलने लगेंगे। दो पथ है बाप, एक तो साधनापथ है और प्राप्य साध्य। भगवान के पास 'मानस' कहता है, दो रहता है, माया और भक्ति।

माया भगति सुनहु तुम्ह दोउं ।

भक्ति भी हरि के पास रहती है; माया भी हरि के पास रहती है। और नारी पुरुष को आकर्षित करती है, स्वाभाविक है। विजाति के प्रति आकर्षण ये प्रकृतिजन्य है। अपवाद हो सकते हैं। 'योगवाशिष्ठ्य' में जब व्यक्ति का धन आप को अच्छा न लगे, ऐसी एक बात है। 'योगवाशिष्ठ्य' में ऐसा लिखा है कि धन बढ़ाने के लिए उसने जो कर्म किया उसमें पाप है। सावधान! दान, यज्ञ, यात्रा, कथा करवाओ उसमें धन की वृद्धि नहीं होती, धन का व्यय होता है। आप के अकाउन्ट्स में इतना कम होगा। स्थूल रूप में तो कम होता है। एक बात याद रखना मेरे भाई-बहन, कोई ग्रह आप को नडता नहीं, अपना पूर्वग्रह आप को नड़ता है। हमारी जीवन की छोटी-बड़ी ग्रंथियां हमारी बाधा है। और ये ग्रंथि बाहर हो तो छोड़ी भी जा सकती है, अवश्य; वी केन ओपन; उसको हम खोल सकते हैं या तो काट सकते हैं। लेकिन तुलसी कहते है कि ग्रंथि अंदर है। और अंदर अंधेरा है।

ये पल उजाला है, बाकी अंधेरा है।
ये पल गंवाना ना ये पल ही तेरा है।
जो भी है बस यही एक पल है...

न भविष्य की चिंता, न भूतकाल का शोक। बाप, गोस्वामीजी कहते हैं, ग्रंथि अंदर है और वहां अंधेरा है। इसीलिए मेरे देश का ऋषि कहता हैं-

असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।

ये हिन्दुस्तान ही कह सकता है। और टागोर ने बड़ी परिभाषा की इसकी। टागोर कहते हैं, असत्य ही अंधेरा है और अंधेरा ही मृत्यु है। इसीलिए हमें अमृत की ओर लिए चल। जब निकली होगी जिसकी जुबां से ये ऋचाएं, अस्तित्व मुस्कुराया होगा। मृत्यु से डरा नहीं ये आदमी। कहता है, मृत्यु से हम पसार होने को तैयार है लेकिन हमें ले चल अमृत की ओर। असत् है, है। कुबूल! हम खल हैं, हम कामी हैं, हम बुरे हैं!

मो सम कौन कुटिल खल कामी।

है असत् लेकिन मालिक, तेरे पास आया है तो तू जरा हाथ पकड़कर सत् की ओर लिये चल। अंधेरा ठीक नहीं, लेकिन हम अंधेरे में है। भले इन्सान कहलाते हैं लेकिन हम सब अंधेरे के यात्री हैं और कह दो भगवान को इस फिलम की पंक्ति से, हमारी भी सुन! तेरे अंश है। बेटा बाप की दाढी खिंच सकता है! गोद भी गंदी कर सकता है! कहो सब कि-

तुम्हें जिंदगी के उजाले मुबारक,
अंधेरे हमें आज रास आ गये है।

हे हरि, तू तो प्रकाशपुंज है। मुबारक तेरा उजाला! लेकिन काम, क्रोध, लोभ ये अंधेरे अब तो रास आ गये हैं सब! हमारे लिए स्वाभाविक हो गया है! गुस्सा करना, वासना में डूबना, लोभग्रस्त होना, मानो हमारी प्रकृति बन चुका है! हम से नहीं छूटेगा!

तुम्हें पाके हम खुद से दूर हो गये हैं।
तुम्हें छोड़कर अपने पास आ गये हैं।

हे जगत, तूझे पाने के बाद हमें घाटे का सौदा हुआ कि हम अपने खुद ही से दूर भाग निकले!

वो दूर होता तो उसे मैं ढूंढ लेता 'फ़राज़',
मेरी राह में बैठा है इसे पाउं कैसे?

फ़राज़ का शे'र है। ये पूरा संसार प्यारा है लेकिन खुदी छूट जाये तो खुदाई ठीक नहीं!

आज मेरे श्रोता ने मुझे प्रश्न भी पूछा है, 'बापू, मैं करीब आठ साल से आप की व्यासपीठ को सुनता हूं। बहुत आनंद, बहुत प्रसन्नता और बहुत शांति से भरा रहता हूं। अब क्या करूं?' बड़ा प्यारा प्रश्न है। छोटा-सा जवाब, 'बहुत शांति, बहुत प्रसन्नता और आनंद से भर गये हो तो मेरी प्रार्थना है, सब को बांटना शुरू करो, 'ले जाओ मेरी खुशियां, मेरे उजाले ले जाओ!' क्योंकि बांटने से बढ़ेगा। बांटो खुशियां, बांटो प्रसन्नता, बांटो हरिनाम। ये बांटने की चीज़ है। मेरी व्यासपीठ बांट रही है। क्योंकि व्यासपीठ ने पूरा पाया है। 'रामचरित मानस' में खज़ाना भरा है इसलिए ले लेकर बांटो, बांटो! ये पूरा शास्त्र है। ये प्यारी दुनिया है। इससे भागना नहीं है।

तो, वेदमंत्र कहता है, जो जागता है उसका स्मरण हरि करता है। कहो ठाकुर को हमारी औकात हो इतने कदम हम चल सके, अब तेरा काम है। दूसरी हर चीज़ अच्छी है लेकिन वो हमें खुशी देगी इस भ्रम से बाहर निकलें। खुशी हमारी खुदी देगी। सब का स्वागत होना चाहिए, लेकिन उत्सव तो अंदर होना चाहिए। क्योंकि ऋषि कहता है, हमें उजाले की ओर ले चल! दूसरों के आधार पर मिली खुशी टिकाउ नहीं है। किसी व्यक्ति के कारण आप सुखी है तो व्यक्ति को अवस्था लगेगी। खुशी के सभी कारण मिटते जायेंगे क्रमशः क्योंकि ये उधार खुशी है। लेकिन हमारी दशा ये है कि दूसरे अच्छे लगते हैं! हमारी संपदा जो है इससे हम संतुष्ट नहीं है, क्योंकि भीतर गये नहीं!

शंकराचार्य कहते हैं,'शिवोऽहम्, शिवोऽहम्।' मैं, मैं हूं। बड़ा पाश्चात्य चिंतक नित्से का एक वाक्य मुझे बहुत प्रिय है। उसने कहा, यदि परमात्मा है तो मेरा क्या? मैं कहां जाउंगा? या तो वो हो सकता है या मैं हो सकता हूं। ये लगता है नास्तिक वाक्य, लेकिन बड़ा आस्तिक वाक्य है।

छुं शून्य ए न भूल ओ अस्तित्वना खुदा,
तुं तो हशे के केम पण हुं तो जरूर छुं!
-'शून्य' पालनपुरी

मैं तो हूं, तू है कि नहीं, ये प्रश्नार्थ है! खुद से राजी होओ। और जब खुद से राजी हो जाओ तो बांटो। खुद से खुश रहो। और जो खुद से खुश रहता उसको अल्लाह की खुदाई नाखुश नहीं कर सकती। टोटली इम्पोसिबल। इसीलिए बुद्धपुरुष कायम प्रसन्न होते हैं, नितांत सुखी होते हैं। मैंने कल एक वाक्य कहा था कि मेरी दृष्टि में बुद्धपुरुष परमात्मा से भी ज्यादा पवित्र होता है। उसको मेरी व्यासपीठ बुद्धपुरुष कहती है।

मोतें संत अधिक करि लेखा ।

परमात्मा छल करता है। विष्णु ने छल किया 'मानस' में-

छल करि टारेउ तासु ब्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह ।

भगवान कृष्ण झूठ बोल लेता है! भगवान राम पर ऊंगली उठी है कि उसने छिपकर वालि को मारा! कोई बुद्धपुरुष के बारे में कहेगा कि उसने छिपकर उसको मार दिया? कोई बुद्धपुरुष के बारे में कहेगा कि उसने उसको छला? उसको धोखा दिया? नितांत पावित्र्य का नाम है बुद्धपुरुष। एक जनम नहीं, कोई भी जनम में मिल जाय तो भी प्रतीक्षा करने में भी साधना है। दुनिया अच्छी है जो हम अंदर से थोड़े ठीक हो जाये। ये प्यारी दुनिया प्रसन्नता देती है तब जब हम अपने को समझ लें। अपने को संभल रखे तो दुनिया बड़ी प्यारी है, बड़ी सुंदर है। खुदाई निंदनीय नहीं है।

गोस्वामीजी ने 'उत्तरकांड' में एक ज्ञानदीप का सर्जन किया है कि हमारे दिल में ज्ञानदीप जो प्रगट हो जाये तो ज्ञानदीप के उजाले में हम अंदर की गांठ यदि छोड़ पायें। लेकिन जब ज्ञानदीप जलता है तब देवताओं को मुश्किल होती है! वो ज्ञानदीप को बुझाने के लिए रिद्धि-सिद्धि, माया के हर पदार्थ को भेजते हैं और उस ज्ञानदीप बुझाने की चेष्टा करते हैं। माया भेजते हैं कि दीप बुझा दो, दीप बुझा दो।

कल बल छल करि जाहिं समीपा ।
अंचल बात बुझावहिं दीपा ।।

कीर्तियां, प्रतिष्ठा ये सब देवता भेजते हैं ताकि उसका दीप बूझ जाय! और अक्सर दीप बूझ जाता है! इसीलिए तुलसी ने एक व्यवस्था की भक्तिमणि की। तुलसीजी से किसीने पूछा कि ये मणि मिले कहां? 'पावन पर्बत बेद पुराना।' बेद-पुराण पर्वत है। लेकिन पूरे पर्वत में जहां हाथ डालो वहां मणि नहीं मिलता। वहां कुछ विशिष्ट खदान होती है, वहां मणि की खदान होती है। तो वेद-पुराण तो पर्वत है लेकिन मणि की खदान कहां है? 'रामकथा रुचिराकर नाना।' वेद-पुराण में राम-कृष्ण की जो कथाएं है, उनके संदर्भ में जो कुछ सूत्र आते हैं वो प्यारी-प्यारी खदान है, उसमें मणि है भक्ति का। और मणि की खदान खोदे कैसे? तो तुलसी कहते हैं, सद्बुद्धि से उसको खोदा जाय।

मर्मी सज्जन सुमति कुदारी ।
ग्यान बिराग नयन उरगारी ।।

आंख दो होनी चाहिए। लेकिन दो जरूरी है। एक ज्ञान और दूसरी बैराग की आंख भक्तिमणि को खोजेगी। कहीं-कहीं दुनिया में देखा जाता है कि ज्ञान की आंख तो कई लोगों के पास है लेकिन वैराग की आंख या तो फूट गई है, या तो बंद रखी है, अल्लाह जाने! भक्ति मणि है बाप! प्रेम मणि है। उसमें न दीये की जरूरत न बाट की जरूरत, न कुछ। और मणि को कोई हवा बुझा नहीं पाती। क्योंकि उसका स्वयं प्रकाश है, खुद का। अंदर अंधेरा हैं और दीपक कभी-कभी सत्संग से हमारे और आप के जीवन में जलता भी है। लेकिन कोई न कोई प्रलोभन ये दीप बुझा देता है। दीप जलाओ तो उजाला हो जाये लेकिन अचानक दीप बुझ जाय तो या इससे भी ज्यादा अंधेरा कुछ समय के लिए महसूस होता है। ज्ञान का दीप, समझ की ज्योति जब बूझ जाती है प्रलोभनों के कारण तब साधक के अंदर गहरा अंधेरा ओर हो जाता है। और ग्रंथि छूटती नहीं है! कोई ग्रह नहीं नड़ता, पूर्वग्रह नड़ता है! पहले मैं भी एक वींटी पहनता था, आप जानते हैं। लेकिन कोई ग्रह-ब्रह की नहीं! मेरे पास तो एक ही ग्रह है, मेरे गुरु का अनुग्रह। ओर क्या साहब!

तो मेरे भाई-बहन, भक्ति और माया दोनों नारीरूपा है और परमात्मा के साथ रहती है। तो पुरुष का स्वाभाविक आकर्षण स्त्री के प्रति होता है। और माया तो बड़ी नर्तकी है, खूबसूरत है। तो ज्ञान, वैराग, योगा ये सब पुरुष है। तुलसी का दर्शन है। तो माया इतनी सुंदर है कि ऐसे ज्ञानीओं को, वैरागीओं को, योगीओं को भी माया आकर्षित कर लेती है। पराशर को, शृंगी को, विश्वामित्र

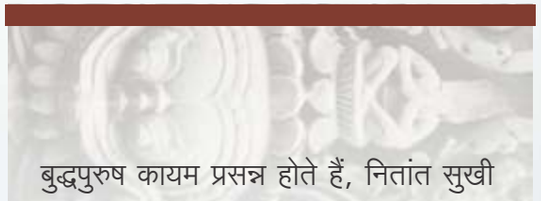

बुद्धपुरुष कायम प्रसन्न होते हैं, नितांत सुखी होते हैं। मेरी दृष्टि में बुद्धपुरुष परमात्मा से भी ज्यादा पवित्र होता है। उसको मेरी व्यासपीठ बुद्धपुरुष कहती है। परमात्मा छल करता है। विष्णु ने छल किया। भगवान कृष्ण झूठ बोल लेता है! भगवान राम पर ऊंगली उठी है कि उसने छिपकर वालि को मारा! कोई बुद्धपुरुष के बारे में कहेगा कि उसने छिपकर उसको मार दिया! कोई बुद्धपुरुष के बारे में कहेगा कि उसने उसको छला! उसको धोखा दिया! नितांत पावित्र्य का नाम है बुद्धपुरुष।

को भी ये आकर्षित कर ले क्योंकि ये पुरुष है और ये नारी! लेकिन नारी का नारी के प्रति आकर्षण नहीं होता है। अपवाद बात ओर है। माया नारी है, भक्ति भी नारी है, इसीलिए माया पुरुष को आकर्षित करती है, ज्ञानीओं को गिरा सकती है। भक्त को नहीं गिरा सकती। क्योंकि भक्ति परमात्मा की पदमणी है। गंगासती कहती है, 'प्रेमदा पदमणी' है। कभी-कभी लगता है कि गंगासती ने कौन-सी साधना की? लेकिन कभी-कभी कहां सूत्र निकल जाता है, क्या पता? कहां से वेद निकल जाय? कहां से ऋचा निकल जाय? अपनी-अपनी बोली में, अपने-अपने अनुभव में, ये बिलग क्षेत्र हो जाता है। तो-

भगति हरिनी पदमणी प्रेमदा पानबाई!
रहे हरिनी जो ने पास;
भाई रे! सतगुरु वचनमां सुरताने राखो,
तो तो हुं ने मारुं मटी जाय,
निंदा ने स्तुति ज्यारे समतुल्य भासे,
त्यारे अभयभाव के'वाय...

तमारा सद्गुरु, तमारा बुद्धपुरुषनां वचनोमां सूरता राखजो। गंगासती ये नहीं कहती कि मैं तेरा गुरु हूं। डिस्टन्स कर दिया। अने सद्गुरुनां वचनोमां सुरता रखने से क्या होगा? 'हुं ने मारुं मटी जाय', तुलसीदासजी ने 'अरण्यकांड' में माया की यही व्याख्या की है-

मैं अरु मोर तोर तैं माया ।
जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया ।।

हमारी चर्चा चलती है मेरे भाई-बहन कि वेद की परिभाषा हम कैसे कर पायेंगे? कोई बुद्धपुरुष के पास

हम चूपचाप बैठ जाय। महसूस करें, अहसास करें। तो बाप, अंधेरा मिटे और हमारी ये जागृति हो जाये। प्रयत्न करे किसी की कृपा से! हम अंधेरे में हैं, तू हमें हाथ पकड़कर ले चल।

तो मैं बीच में कोई संदर्भ से बोल रहा था, 'योगवाशिष्ठ्य' में लिखा है कि धन की वृद्धि बिना पापकर्म नहीं होती। दान करो, यज्ञ करो, यात्रा करो तो धन व्यय होगा, कम होगा। ऐसा क्यों कहा योगवशिष्ठ ने? हमें क्यों डराया? लेकिन एक दूसरा सूत्र है वहां। बहुत प्यारी बात करता है 'योगवाशिष्ठ्य।' संपत्ति की बेटी का नाम है चिंता! इसका मतलब अधिक संपत्ति किसी की न हो इस पक्ष में मैं नहीं हूं। आप के पास बहुत हो, होना चाहिए। लेकिन ये समझ भी होनी चाहिए। जैसे मैंने कहा, आनंद आया, बांटो। भले कैसे भी हमारी पास संपदा आ गई तो एक ही उसका शुद्धिकरण का उपाय है, बांटो। 'तेन त्यक्तेन भूंजीथा:।' वर्ना हमारे यहां तीन गति बताई है धन की- भोग, नाश, दान। यद्यपि दान करने से, यज्ञ करने से, यात्रा करने से धन व्यय होता है, कम होता है लेकिन यही अंदर से वृद्धि का भी एक कारण है। जीवन में पदार्थों की महत्ता है कि जीवन की? मरीज़साहब का एक शे'र है-

जिंदगीना रसने पीवामां करो जल्दी मरीज़,
एक तो ओछी मदिरा छे ने गळतुं जाम छे।

रस पी ले। तो मेरे भाई-बहन, संपत्ति की कन्या का नाम योगवशिष्ठ ने चिंता बताया। जो समृद्धि विकास होने के बाद मयखाने ले जाय, जुआ में ले जाय, बेईमानी में ले जाय तब समझना कि ये संपत्ति के पीछे पापकर्म छीपे हैं। लेकिन जो संपत्ति ज्ञानयज्ञ में, तीर्थाटन में, दान में दूसरों के उपयोग में सद्भाव के साथ वितरित की जाय तो यद्यपि अकाउंट में कम होता है, लेकिन भीतरी एक नया अकाउंट खुल जाता है। एक नया खाता खुलता है जिसमें निर्भयता, प्रसन्नता, आनंद, पवित्रता की संपदा सद्गुरु की कृपा से प्रति वर्ष एफ.डी. हो जाती है। उत्तरोतर बढ़ती है।

भगवान विष्णु क्षीर समुद्र में योगनिद्रा में रहते हैं। लेकिन 'यो जागार' है। फिर भी वो निरंतर जाग्रत रहते हैं। ऐसे विष्णु पंचधर्म संयुक्ता है।

नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन।
करउ सो मम उर धाम सदा छीरसागर सयन।।

तुलसी के 'बालकांड' के मंगलाचरण में आये इस सोरठे में पंचधर्म संयुक्त विष्णु का दर्शन है। एक है श्रमधर्म, दूसरा है ज्ञानधर्म, तीसरा है प्रेमधर्म, चौथा है ध्यानधर्म और पांचवां है समाधिधर्म। ये पंचधर्मा संयुक्ता विष्णु को हमारे मनीषीओं ने माना है। अब तुलसी का सोरठा लीजिए। 'नील सरोरुह स्याम', ये पहला टुकड़ा। विष्णु का वर्ण कैसा है? नीलकमल जैसा श्याम। और ध्यान देना, पूरे विश्व में जहां श्याम वर्णी चर्म है वो सब श्रमनिष्ठ लोगों का प्रदेश है। अथवा तो श्रमधर्म श्याम हो जाते हैं।

तो बाप, ये पंचधर्मा विष्णु का पहला परिचय है श्यामधर्म यानी श्रमधर्म। विष्णु श्रम करता है। विष्णु परिपालन का देवता है इसीलिए ये श्रमधर्मा है। जन्माना ये महिमावंत है अवश्य लेकिन पालन की जो प्रवृत्ति है ये तो नव मास का श्रमधर्म है ये। 'बिष्नु कोटि सम पालनकर्ता', ये पालक तत्त्व है। और फिर संहार करना ये तो दो मिनिट की बात है! शंकर की चुटकी की बात है! 'तरुन अरुन' ये ज्ञानधर्म का प्रतीक है। ज्ञानी सदैव ताज़ा रहता है। पंडित बासी हो जाता है। ताज़ा तरोज़ा ये ज्ञानधर्म का लक्षण है। विष्णु कैसे है? परम ज्ञानी है। वो ज्ञान है उसके पास जो 'परमपद' का पर्याय बन जाता है। वेद आज भी पुराने नहीं हुए क्योंकि वेद ज्ञान के प्रतीक है। राम कभी पुराने हुए नहीं क्योंकि 'ग्यान गम्य जेहि रघुराई।' प्रेम कभी पुराना हुआ है? ये तो 'प्रति क्षण वर्धमानं' है। 'नित्य नूतन अविच्छिनं' है।

तो तरुण का अर्थ है ज्ञानधर्म। फिर अरुण; अरुण मानी लाल रंग। लाल रंग भक्तिमारग का प्रेम का रंग है। ये प्रेमधर्म। भक्ति का रंग लाल माना गया है। और हम सब प्रेम के कारण अपने बच्चे को लालन कहते हैं। 'मेरा लाल' ये प्रेम का शब्द है। जिसके जीवन में प्रेम होता है उसकी आंखों में लाल दोरे होते हैं। लाल रंग ज्यादा दिखाई न दे, प्रगट न हो जाय लाल रंग इसीलिए हमारे यहां शृंगार के वर्णनों में कज़रा आया। प्रेम बड़ा गोपनीय है। यद्यपि छिपा नहीं रहता। मेरे भाई-बहन, प्रेम की बड़ी महिमा है जगत में; उसका रंग लाल बताया है। गुलाबी-सा! और हृदय का रंग भी तो गुलाबी-लाल जैसा है। विष्णु का प्रेमधर्म का प्रतीक है 'अरुन नयन।' यहां लिखा है तुलसी ने कि ऐसे विष्णु मेरे हृदय में निवास करे, मेरे हृदय में धाम करे; ये है विष्णु भगवान का ध्यानधर्म। और 'सदा छीरसागर सयन।' योगनिद्रा में ये समाधिधर्म है। शेषशैया विष्णु की ये योगनिद्रा का प्रतीक माना गया है। यहां विष्णु को जब हमारे मनीषीगण पंचधर्म संयुक्त कहते हैं, तब 'मानस' में मैं देख रहा था तो मुझे लगा कि ये पंचधर्म तो यहां प्रतिबिंबित होते हैं। ऐसे विष्णु की चर्चा हम कर रहे हैं।

कल भगवान राम के प्रागट्य उत्सव मनाया गया संक्षेप में। उसके बाद चारों भाईओं का नामकरण संस्कार होता है। यज्ञोपवित संस्कार होता है। चारों भाई वशिष्ठ के यहां विद्या प्राप्त करने के लिए जाते हैं और अल्पकाल में विद्या प्राप्त कर लेते हैं। जो विद्या प्राप्त की है वो जीवन में चरितार्थ करते हैं। विद्या का व्यवहार में विनियोग करते हैं। उसके बाद विश्वामित्रजी आते हैं और विश्वामित्रजी दशरथजी से यज्ञरक्षा के लिए महाराज के पुत्रों की मांग करते हैं। और वशिष्ठजी के समझाने पर दशरथजी राजी होते हैं राम-लक्ष्मण को विश्वामित्र के संग भेजने के लिए। राम-लक्ष्मण को लेकर वो अपने सिद्धाश्रम की ओर जाते हैं। रास्ते में ताड़का का संहार कर दिया। सुबाहु को निर्वाण। मारीच को फैंक दिया।

कुछ दिन भगवान विश्वामित्र के आश्रम में रुके। उसके बाद धनुषयज्ञ की बात सुनकर हर्षित होकर राम-लक्ष्मण मुनिगणों के संग जनकपुर की यात्रा की ओर निकल पड़ते हैं। रास्ते में गौतम ऋषि का आश्रम आया और वहां अहल्या का प्रभु ने उद्धार किया। वहां ताड़का का संहार और यहां भी एक स्त्री है अहल्या, उसका उद्धार। व्हाय? क्या अहल्या विकारमुक्त है? ताड़का में क्रोध था तो उसमें काम था। तो समझ में नहीं आता कि ताड़का का संहार और अहल्या का उद्धार क्यों? राम-लक्ष्मण विश्वामित्र के संग सुंदर सदन में जनकपुर में निवास करते हैं। लक्ष्मणजी ने जिज्ञासा की कि मेरी समझ में नहीं आता ठाकुर कि ताड़का का संहार और अहल्या का उद्धार? दोनों महिला है। कमज़ोरी वहां भी है, कमज़ोरी यहां भी थी। तब प्रभु ने सुंदर जवाब दिया, लखन, तू मुझे जानता है। व्यवहार भिन्न है। परमात्मा परिणाम में सम होता है, व्यवहार में विषम होता है। संहार किया उसको क्या मिला?

एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा ।
दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा ।।

जिसका संहार उसको भी पद मिला। और जिसका उद्धार हुआ-

परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही।

परमात्मा परिणाम में सम होता है। बुद्धपुरुष परिणाम में सम होता है। आश्रित के साथ व्यवहार में विषम उसको होना पड़ेगा। और ताड़का का प्रारब्ध पूरा हो गया था इसीलिए प्रभु ने उसको उपर का पद दिया और अहल्या का प्रारब्ध अभी बाकी था इसीलिए अपने पास जो पद था वो दे दिया। लेकिन समान भूमि में पद दान हुआ है। ऐसे राम जनकपुर पहुंचे हैं। दोपहर का भोजन हुआ, विश्राम करते हैं। मैं चाहूंगा, आप भी भोजन करे।

मानस-विष्णु भगवान

॥ ७ ॥

हम विश्वमानव बनें यह इक्कीसवीं सदी की मांग है

बहुत चिठ्ठियां है लेकिन इसके सब जवाब इतने दिन की कथा में आ चुके हैं, मुझे स्मरण है। लेकिन मैं जब ये बोलता हूंगा तब वो कहीं बाहर गये होंगे या तो सो गये होंगे! हो सकता है। सब संभावनायें है! रामकथा तो कल्पतरु है। वहां जो चाहो परमात्मा आप को देता है। नींद चाहो, नींद दे; जागृति चाहो, जागृति दे; खुशियां चाहो, खुशियां दे; जो चाहो, देता है। बाकी तो शे'रो-शायरी भी है। एक प्रश्न खास मैं लूंगा, 'बापू, मैं कृष्णमूर्ति को बहुत पढ़ता हूं। कृष्णमूर्ति कहते हैं कि परमात्मा सामने है।' यद्यपि ये पढ़ते हैं इसको ये भी पता होना चाहिए कि कृष्णमूर्ति ज्यादातर 'इश्वर'-'परमात्मा' शब्द यूझ नहीं करते। वो तो लाईफ की बातें करते हैं ज्यादा। लेकिन कहीं आपने पढ़ा है तो किया होगा, जरूर। 'कृष्णमूर्ति कहते हैं कि परमात्मा सामने है। बापू, आप कुछ कहे।' अब कृष्णमूर्ति ने कहा है यदि कि परमात्मा सामने है, तो कृष्णमूर्ति ने ऐसा किस संदर्भ में कहा वो तो वोही बता सकते हैं। मेरी तो उसके उपर केवल कोमेन्ट होगी। बाकी मूल तो वोही बता सकते हैं कि वो किस संदर्भ में बोले हैं। लेकिन मेरी व्यासपीठ से आप पूछते हैं तो मैं इतना कहूंगा कि परमात्मा सामने तभी दिखता है जब परमात्मा अंदर होता है। एक दर्पण में हम हमारी छबि तब देख पाते हैं जब हम होते हैं। यदि हम नहीं हैं, तो दर्पण में भी हम नहीं है। तो सामने परमात्मा को वो देख पाता है जिसने खुद में भी परमात्मा को देखा है। कबीरसाहब का एक पद है-

जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर-भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल-जलहिं समाना यह तत्त कथ्यो ग्यानी।

'हरि ब्यापक सर्वत्र समाना।' जगद्गुरु शंकराचार्य ने 'भज गोविन्दं' स्तोत्र लिखा। उसमें लिखा है, तेरे पास, मेरे पास, ईधर-उधर विष्णु हैं। तू कुपित होकर मेरे साथ नाराज क्यों होता है?

त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णु-
र्व्यर्थं कुप्यसि मय्यसहिष्णुः।

'भज गोविन्दं।' तू गोविन्द भज। चारों ओर विष्णु है। छोड़ नाराजगी। 'भज गोविन्दं, भज गोविन्दं, भज गोविन्दं मूढ़मते।' और ये सब बातें तो होती रहेगी, करते रहेंगे क्योंकि इस मंथन से तो सार को पा सकते हैं हम। लेकिन मंथन करते समय भी हमारे दिल में एक बात बनी रहे मेरे भाई-बहन कि आख़िरी वस्तु तो 'भज गोविन्दं' ही है, इसके अलावा कुछ नहीं।

तो, शंकराचार्य कहते हैं, इधर-उधर हर जगह विष्णु है। छोड़ ये भेद! को शत्रु? को मित्र? ऋग्वेद के अष्टमंडल में एक बहुत बड़ा शब्दमंगल है, 'विश्वमानुष।' इस धरती को अब ऐसे आदमी की जरूरत है जो विश्वमानुष

हो। हिन्दुस्तानी हो उसका गौरव हम जरूर लें लेकिन केवल हिन्दुस्तानी न बन रहे, हम 'विश्वमानुष' बने। हम प्रांतवादी न बने, हम केवल संप्रदायवादी न बने, हम जातिवादी न बने, हम भाषावादी न बने; जो गुरुदेव टागोर ने कभी कहा था कि दुनिया को टुकड़े-टुकड़े कर दी गई, इन छोटे-छोटे हिस्सों में तोड़ डाली दुनिया को! कितनी सनातन उद्घोषणा अष्टमंडल में हुई! तब से भारतीयों की आत्मा ये ही आवाज़ दे रही है कि विश्व में विश्वमानव होना चाहिए। केवल गुजराती, केवल बंगाली, केवल ओडिसी, केवल तमिली, केवल फल्गां, नहीं। ठीक है, अपनी पहचान बनी रहे। हम विश्वमानव बने। इक्कीसवीं सदी की ये मांग है। और तथाकथित सत्तायें, संपत्तिवालें, मुझे कहने दो तथाकथित धर्मवाले भी जो दुनिया के विघटन में लगे हैं! इसके सामने छोटा दीया लेकर तलगाजरडा से मैं निकला हूं कि कोई इस रोशनी को समझे। कोई इस उजालें को समझे कि मेरे भीतर की कौन चाह है-

नये दौर के ये नये ख्वाब है।
नये मौसमों के ये नये गुलाब है।
ये मोहब्बत का चराग है,
नफ़रतों की उसको हवा न दें।

-बशीर बद्र

मैंने सालों पहले कहा था कि मेरा बस चले तो यूनो की बिल्डिंग पर मैं लिखवा दूं, 'प्रेम देवो भव।' मुझे पता है कि मेरा चलनेवाला नहीं है! लेकिन भारतीओं का कभी-कभी चल जाता है। इसीलिए यूनो ने भी बहुत ज्यादा मत से विश्व के लिए एक 'योग दिन' निश्चित कर दिया। मैं स्वागत करता हूं।

मेरा एक मनोरथ था; मैंने सत्ता से परमिशन भी मांगी थी कि मुझे एक बार यूनो की बिल्डिंग की माला जपते-जपते परिकम्मा करने की इज़ाज़त दी जाय, और मुझे मिली थी। मैंने परिकम्मा की। जहां विश्वमानुष कि संभावना हो सकती है। और मैंने वोशिंग्टन में 'व्हाईट हाउस' की भी इज़ाज़त मांगी थी, वो भी मुझे मिली। और उस समय मेरे साथ एक व्यक्ति थे चंद्रकांतभाई, जो ओलरेडी विश्व बेंक में उस समय कार्यरत थे।

मैं गोविंद को कहता हूं, कृष्ण तूने कह दिया कि 'कर्म करो', तो हम करेंगे। फल की आशा न रखो, तो हम नहीं रखेंगे। लेकिन रस तो हम लेंगे। हम को कर्म करने में जो रस आता है वो तो हम लेंगे। मुझे कई लोग कहते हैं कि कथा दुनियाभर में करते हो, कौन सुधर जायेगा? अरे कोई सुधरे न सुधरे, मैं बिगड न जाउं इसीलिए मैं कर रहा हूं। कोई ठेका थोड़ा लिया है तुम्हें सुधारने का! हम कहीं बिगड न जाये! फिर हमनें 'क्रेमलिन' की भी परिकम्मा की। तब तो मेरे साथ बहुत लोग थे। हम रशिया गये मोस्को में तो वहां भी एक परिकम्मा की। अब एक परिकम्मा बाकी है। लेकिन परिकम्मा नहीं करनी है, अंदर जाना है, संसद में, 'रामायण' लेकर! मैं तो विनोद कर रहा हूं। मेरे लिए तो ये 'जनसंसद' है! जहां बैठता हूं वहां एक अपनी संसद है। जहां 'बहुमती' नहीं 'सर्वमती' होती है। एक छोटे बच्चे से लेकर बूढ़े तक एक सर्वमती चलती है। 'सभी सयाने एक मत।' हम गर्व न करे लेकिन प्राउड तो महसूस करे हम कि हमारे पूर्वजों ने, हमारे इस ऋषिमुनिओं ने इस सुंदर पृथ्वी के लिए क्या सूत्रपात किया था! और अक्सर समय-समय पर भारतवर्ष कोई न कोई ऐसा विश्वमानव देता रहा है। गांधी कौन थे? 'विश्वमानव' नहीं क्या? हम कितने टूटे जा रहे हैं? तुलसी की एक पंक्ति रामराज्य का वैश्विक पर्याय है-

सब नर करहिं परस्पर प्रीती ।

रामराज्य का प्राणमंत्र था कि ऐसा राज्य, एक ऐसी दुनिया कि जिसमें सब लोग परस्पर प्रीत करे। छोड़ो पूरी दुनिया की, अपनी छोटी-सी दुनिया हो, पांच सदस्यों का छोटा-सा घर हो इनमें तो परस्पर प्यार करें!

ज्ञानेश्वर महाराज ने 'ज्ञानेश्वरी' लिखी फिर सोचने लगे कि ये ज्ञानेश्वरी मैं किसको अर्पण करूं? तो सोचा फिर उसने कहा कि मैं ये ग्रंथ विश्वआत्मा को समर्पित करता हूं। हमें थोड़े में संतोष नहीं, हम विशाल और विराट चाहते हैं। तुकारामजी से पूछो कि आप का स्वदेश कौन है? तो तुकाराम तो मराठी में बोले हैं, लेकिन 'स्वदेशे भुवन त्रयं', मराठी में कहा कि तीनों भुवन मेरा देश है। ये है विश्वमानुष की उद्घोषणा।

मुझे किसीने कभी पूछा, रामतीर्थ आप को इतने प्यारे क्यों है? मेरे निकट पड़ते हैं। क्योंकि तुलसी की परंपरा में, तुलसीकुल में आये हैं। और दूसरा मेरा इससे नाता जुड़ता है वो ऋषिकेश कैलास आश्रम में वो वेदांत पढ़े है, जहां मेरे दादाजी महामंडलेश्वर रहे हैं। स्वामी क्यों न पसंद आये? अपना है। रामतीर्थ अद्भुत है! रामतीर्थ को हिन्दुस्तान शायद कुछ कम समझ पाया उस समय में; अमरिका ज्यादा समझ पाया था। क्योंकि अमरिका के पास कोई पुरानी परंपरा ही नहीं थी। दो सौ-तीन सौ साल का मूल इतिहास उसका। न कोई उसके जड़ संस्कार है। कोरी पाटी थी तो रामतीर्थ के वेदांत को बहुत समझ पाया। इसीलिए एक दिन मैंने निवेदन किया था, कथा ठीक से सुननी हो तो सब भूलकर आओ। मैं भी भूलकर आउं, आप भी भूलकर आओ। तभी ओर आनंद आयेगा। तभी ओर रस आयेगा। जब अमरिका ने इतना आदर दिया स्वामी रामतीर्थ को तो उसको लगा कि मेरा देश तो मुझे कितना आदर देगा! और फिर उसने निर्णय किया कि मैं हिन्दुस्तान जा रहा हूं। और सब से पहले हिन्दुस्तान में भी काशी जाउं। और काशी दुनिया में बहुत प्राचीन नगरी है। मैं दुनिया के ओर धर्मों के स्थानों का नाम लेना नहीं चाहता लेकिन सब स्थान बाद में है, मूल में काशी है। रामतीर्थ का इतिहास कहता है कि उसने सोचा कि मैं पहले काशी में जाउं और मेरे पंडितलोग, मेरे साक्षर, अद्वैत की बातें करनेवाले लोग मेरी बात से राजी होंगे।

नागरिक अभिनंदन की एक सभा मिली। स्वामीजी आये। और बहुत सुंदर बोले साहब! एक पंडित खड़ा हो गया, 'स्वामीजी! संस्कृत में बोलो। बिना संस्कृत वेदान्त न समझा जाता है न समझाया जाता है!' स्वामीजी चौंक उठे कि वेदांत के लिए कोई भाष्य की पाबंदी हो सकती है? वेदांत तो दिल का दीप है। किसी भी माचीस से जल सकता है। और एक मत के अनुसार ऐसा कहा जाता है, जो मैंने ठीक से पूछा है कि उसके बाद थोड़े उदास हो गये थे स्वामीजी। और हिमालय चले गये। और आख़िरी समय में उसने संन्यास छोड़ने की भी तैयारी की थी। जिस फकीरी लेकर मैं घूमा, मेरा देश ही मुझे समझ न पाया! यद्यपि उसके बाद वो संस्कृत सीखे हैं कि जिन्होंने आलोचना की वो अपनी जगह है लेकिन मेरे में भी कमी है, मैं मेरी भाषा सीख लूं! लेकिन एक चोट खा गया आदमी! और आप जानते हैं, अपने शरीर को वो गंगा में बहा देते हैं। बुद्धपुरुषों की हमने ये दशा की है! फ़ारसी और उर्दू के प्रकांड विद्वान, यंग मेन कालेज के भूतपूर्व प्रोफेसर स्वामी रामतीर्थ।

'रसो वै सः।' फल न मिले तो कोई चिंता नहीं। कर्म करते-करते कर्म का रस ले लें। अब मैं कथा गाउं तो उसका फल मुझे क्या चाहिए? कथा का फल कोई दे भी क्या सकते हैं? इन्द्र भी बेचारा कंगाल है! वो दे तो क्या दे? मुझे कथा में रस आये वोही आनंद है। तुम को कथा में रस आये वोही आनंद है। और क्या? छोड़ो फल! याद रखना सूत्र, विष के साथ राम हो तो परिस्थिति बहुत विकट हो लेकिन रामनाम न छोड़ा तो 'विश्राम' हो जायेगा और पूरा 'विश्राम' हो और 'राम' निकल गया तो वो 'विश्राम' विष बन सकता है।

हवे तारो मेवाड मीरां छोडशे,
मीरां विनानुं सुख घेरी वळशे ने राज,
रूंवेरूंवेथी तने तोडशे।

आप के प्रश्न का उत्तर इतना ही मेरे पास कि कृष्णमूर्ति कहते हैं कि परमात्मा सामने है। कृष्णमूर्ति को नमन। लेकिन मुझे इतना ही कहना है कि सामने जो भी हो वो परमात्मा है। बस, इससे ज्यादा कुछ नहीं। परमात्मा सामने हैं, माना। लेकिन ये भी सोचना पड़ेगा कि हमारे सामने जो भी है ये सब परमात्मा है। ये वृक्ष परमात्मा है, ये नदियां परमात्मा है, ये चहकते हुए पक्षी परमात्मा है, ये घीरी-घीरी बादल परमात्मा है। इसीलिए तुलसी कहते हैं-

सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

एक चिठ्ठी तो मैं भी लाया था उसमें मैंने कुछ शे'र लिख लिए थे। मैं आप को बता दूं।

कई पेड़ धूप के पेड़ थे।
तेरी रहेमतों से हरे रहे।
-बशीर बद्र

कई जिंदगी धूप में, संताप में, मुश्किल में रहती हैं। फिर भी हम जी जाते हैं। बशीर जवाब देते हैं, 'तेरी रहेमतों से हरे रहे।' मुझे कुछ अच्छा मिलता है न तो जल्दी होती है कब उनको सुना दूं! कभी सुन लेता हूं, पढ़ लेता हूं तो फिर लगे कि मेरे श्रोताओं में कब बांटूं? तो आज सुबह मैंने ये लिख लिए थे-

मेरे पास तो आग के फूल थे,
फिर भी मेरी झोलीओं में भरे रहे।

थी मुश्किल, लेकिन गुरु ने ये कंथा पकड़वाई थी। अर्थ मैं करता हूं। इन कंथा में मैंने संभाले है इन विपत्तिओं को, इन मुसीबतों को ऐसा बशीरसाहब का कहना है।

'मानस-बिष्नु भगवान' केन्द्र में है ये सब्जेक्ट, जिसकी 'मानस' के आधार पर हम चर्चा करते हैं। तो राम जानकी को खोजते समय 'सीता कहां, सीता कहां', ऐसे अज्ञ कैसे हो गये? 'सो सर्वग्य जथा त्रिपुरारी।' वो तो सर्वज्ञ हैं। तो सीता के वियोग में रोये, तड़पे ये सब क्या है?

'योगवाशिष्ठ्य' में विष्णु राम हुए उसके चार कारण बताये हैं। एक कारण कुमार सनतकुमार। दूसरा सती वृंदा। थोड़ी बिलग ढ़ंग की एक कथा 'योगवाशिष्ठ्य' कहता है संक्षेप में, बीजरूप में कि देवशर्मा नाम का एक ब्राह्मण था वो कारण बना था विष्णु के राम होने में। और वृंदा, सनतकुमार, देवशर्मा, जलंधर ये कुछ न कुछ कारण बने। विष्णु राम हुए और राम बनकर वो कुछ न कुछ दु:ख सहन करते हैं। हमारे यहां बहुत अद्‌भुत कथायें है और सब कथायें विचित्र है! इसीलिए कथा गुरुमुख होनी चाहिए तभी उसकी गुत्थियां सुलझती है। वर्ना मुश्किल पड़ता है।

पहले मैं कुमार की कथा सुनाउं कि कुमार सनतकुमारों के कारण विष्णु राम हुए और वो सीता के वियोग में दु:खी हुए। इसका कारण 'योगवाशिष्ठ्य' बताता है। एक बार पितामह ब्रह्मा के घर सनतकुमार बैठे थे। तब वहीं भगवान विष्णु का आगमन हुआ। कहते हैं, पितामह ने खड़े होकर पालक सत्ता का सन्मान किया, 'आप पधारिये।' और कई महद्‌गण बैठे थे वहीं; सब ने आदर दिया। यहां क्या हुआ? सनतकुमार खड़े नहीं हुए। बड़ी विपरीत कथा है। और भगवान विष्णु ऐसा बोले उस समय कि तुम्हें निष्कामता और निरपेक्षता का अहंकार आ गया। फिर कह दिया, जंगल में तुम्हारा वनस्पति के रूप में अवतार होगा सनतकुमार! ऐसा श्राप दे दिया! और सनतकुमार भी बिलग ढ़ंग के दिखते हैं वहां। तो उसने सामने शाप डाला कि विष्णु तू भी सुन कि तुम्हें राम होना पड़ेगा और हम बन के वृक्ष होंगे और तुम ऐसे वन में दर-दर भटकोगे और सीता के वियोग में रोओगे! एक कारण, सनतकुमार।

दूसरा कारण, ये जो ब्राह्मण देवता की बात है। कहते हैं, वो नदी के किनारे पर उसकी पत्नी बैठी थी, खुद बैठे थे, उस समय नृसिंह भगवान के रूप में विष्णु भगवान वहां आये। और नृसिंह तो भयंकर रूप है साहब!

उसमें वो ब्राह्मण देवता की पत्नी डर गई। डर गई और उसका देहांत हो गया! और ब्राह्मण देवता का दिमाग गया कि तुम्हारे रूप ने मेरी पत्नी की जान ले ली है! मैं शाप देता हूं कि तुम विष्णु राम होओगे और तुम्हें भी तुम्हारी पत्नी के वियोग में जार-जार रोना पड़ेगा।

तीसरी कथा भार्गव की, एक मुनि की कथा कह दी वहां। उसकी पत्नी का नाम ख्याति था। और ख्याति बड़ी परमात्मा की भक्त थी। एक बार विष्णु पधारे तो ख्याति परमात्मा के स्वरूप में डूब गई। वो प्रार्थना करती है, प्रभु मुझे आपमय बना दो। कथा कहती है कि वो ख्याति विष्णु के रूप में समा गई। और वो महात्मा को बुरा लगा। वहां भी यही इल्जाम कि आप ने मेरी पत्नी का प्राण ले लिया! और जाओ, धरती पर जाकर राम बनो। और अपनी पत्नी के वियोग में रोओ।

चौथा इतिहास आया वृंदा का, जलंधर का। संक्षेप में कह दूं। एक बार इन्द्र और उनका गुरु बृहस्पति दोनों मिलकर भगवान शंकर के दर्शन के लिए कैलास जा रहे हैं। अब शंकर तो सर्वज्ञ है, उसको पता लग गया कैलास पर कि देवगुरु और देवराज दोनों आ रहे हैं। मेरे पर उसकी श्रद्धा है; सच्ची है या गलत, जरा कसौटी करके देखूं। तो भगवान कैलास से आकर रास्ते में भीषण रूप धारण करके देवराज इन्द्र और देवगुरु बृहस्पति के सामने रास्ता रोके खड़े हो गये। विशाल काय! और उसके लिए तो रुद्राष्टक में लिखा ही है, 'करालं महाकाल कालं कृपालं।' इन्द्र ने कहा, मेरा रास्ता रोकनेवाला कौन? एक बार, दो बार, तीन बार बोला। बृहस्पति ने रोका, बेटा, तू अविनय कर रहा है। गुरु साथ में है तो तुझे बोलने का अधिकार नहीं। बृहस्पति ने जरा डांटा। लेकिन इन्द्र को राज्यसत्ता का थोड़ा नशा भी और इतने बड़े गुरु का भी नशा! ये खतरे तो हर जगह है! इन्द्र ने कहा, तू हट जा वर्ना वज्र से तेरा वध कर दूंगा! शंकर ने वज्रवाला हाथ पकड़ लिया, बच्चा! तू कौन खेत की मूली? और बाबा बहुत कुपित हो गये तब बृहस्पति आये। गुरु को आना ही पड़ता है, करे क्या? कहा, महादेव, माफ करो, मेरा चेला है, नासमझ है! नादान है! वहां दृष्टांत देते हैं कि सांप कांचळी उतार दे फिर सांप भी उसको पहन नहीं सकता। मेरा एक बार क्रोध आ गया, आ गया। अब उतरेगा नहीं! व्यवस्था करो; बृहस्पति, क्रोध को डालू कहां? तब बृहस्पति ने कहा, समुद्र में डाल दो। अब क्या हुआ? जो क्रोध महादेव को हुआ था वो समंदर में डाल दिया। फिर तो मूल रूप में बाबा प्रगट हुए। इन्द्र ने भी स्तुति की। बृहस्पति ने भी स्तुति की। शंकर भगवान फिर कृपालु हो गये। शंकर भगवान गये। गुरु प्रसन्नचित्त कुछ विशेष वरदान प्राप्त कर देवराज इन्द्र और देवगुरु बृहस्पति फिर स्वर्ग में लौट आते हैं।

यहां जो क्रोध समंदर में डाला गया, एक बालक के रूप में परिवर्तित हो गया और रोने लगा। उसी समय में ब्रह्माजी का आना हुआ। समंदर ने कहा, ये बालक है, आप तो सर्जक है बाबा! बहुत रो रहा है उसको गोद में लीजिए और बालक को गोद में लिया ब्रह्माजी ने और बालक ने ब्रह्मा का गला पकड़ा! बूढ़े ने कहा, मेरा गला छोड़। कहते हैं, उस समय ब्रह्मा की आंख में आंसू आ गये। बालक शांत हुआ। समंदर ने कहा कि आप की गोद में लेटे बालक को आप ने कैसे भी शांत किया, जलबूंद आप की आंखों से गिरी और शांत हुआ। अब नामकरण करो; तब ब्रह्मा ने कहा, इसका नाम जलंधर होगा। बड़ा हुआ है। शुक्राचार्य आये। राजतिलक हुआ जलंधर का। और 'रामचरित मानस' में जो कालनेमी राक्षस है, ये कालनेमी की कन्या वृंदा से इसका ब्याह करवाया। वृंदा कालनेमी की कन्या है। जलंधर और वृंदा की शादी हुई। और महान पतिव्रता स्त्री ये कन्या। और फिर जलंधर आख़िर तो राक्षस स्वभाव, क्रोध का ही अवतार है! और याद रखना, मेरा अर्थ यहां ये है कि आप का क्रोध कभी आप को ही खा जायेगा। हमारा दोष हमें ही डंसेगा।

जलंधर ये क्रोध का रूप है। एक बार बहुत लड़ाई करके सब को पराजित करते-करते वो कैलास जाता है। और साहब! पार्वती के प्रति हमला किया जलंधर ने। पार्वती अति सुंदर है। मेरे तुलसी लिखते हैं-

छबिखानि मातु भवानि गवनीं मध्य मंडप सिव जहाँ ।

भगवती पार्वती के रूप पर वो जरा वो करने गया उसी समय पार्वती ने आंखें बंद करके विष्णु का स्मरण किया, 'हे पालक! हे प्रभु! ये आदमी अनर्थ कर देगा! आप जल्दी करें, उसकी पत्नी का व्रतभंग करे! और वो मुझ पर हमला करे इसके पहले जलंधर की पत्नी वृंदा का व्रतभंग करो फिर ये मरेगा।' तुलसी वही संदर्भ उठाते हैं-

छल करि टारेउ तासु ब्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह ।

समस्त देवताओं का कार्य किया। मूलत: तो महादेव का कार्य करना था। वृंदा ने जाना कि विष्णु ने छल किया है उसी समय कुपित होकर वृंदा ने शाप दे दिया, मेरे पति की गैरमौजूदगी में आप मुझे छल रहे हैं। आप को राम अवतार लेना पड़ेगा और आप कुटिया में नहीं होगे तब मेरा पति रावण बनकर आप की जानकी को चुरा लेकर भाग जायेगा। 'योगवाशिष्ठ्य' के एक श्लोक में ये चार कथा बीजक रूप में डाल दी।

तो कौन है विष्णु? एक अर्थ में राम का अंश है; एक अर्थ में विष्णु का अवतार राम है। ये घड़े में पानी हो कि पानी में घड़ा हो। अत्र-तत्र-सर्वत्र वोही है, वोही परमतत्त्व है। विष्णु का अर्थ भी तो व्यापक होता है। फैला हुआ, विस्तृत। ऐसी व्यापकता कि कोई अनछूआ न रह जाये। ऐसी व्यापकता का नाम भगवान विष्णु है।

तो मेरे भाई-बहन, इस विष्णु के बारे में कुछ सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा चल रही थी। अब जो थोड़ा समय है उसमें थोड़ा कथा का क्रम आगे बढ़ा लूं। भगवान राम ने विश्वामित्रजी से कहा कि गुरुदेव, लक्ष्मण नगर देखना चाहता है, मैं दिखा आउं? भगवान ने हम सब को एक संदेश दिया, लक्ष्मण जीवधर्म के आचार्य है। जीव जगतरूपी जनकपुर को देखने जाय तो कभी खो सकता है। परमात्मा अथवा तो परमात्मा का सुमिरन लेकर जायेगा तो समय पर लौट आयेगा। हम दुनिया में फिरे, घुमे, लेकिन हरिनाम लेकर घुमे। प्रभु को लेकर घुमे, तो मुश्किल नहीं। और फिर राम-लक्ष्मण जनकपुर के राजमारग पर आते हैं। ये नगरी तो नाम-रूप को मिथ्या माननेवाली वेदांती नगरी है साहब! देह नगर नहीं, ये तो विदेह नगर है। प्रभु ने राम-लक्ष्मण ने पूरी मिथिला को डूबो दी अपने नाम-रूप में! और यहां सायं काल होने की तैयारी थी। ले आये राम लक्ष्मण को। गुरुदेव को प्रणाम किया। सायंकाल की संध्या पूजा की।

सुबह का नित्यक्रम शुरू होता है उसके बाद राम-लक्ष्मण दोनों भाई गुरु की पूजा के लिए फूल लेने के लिए जनक के बाग में जाते हैं। यहां जानकीजी माँ के कहने से अष्ट सखीओं के साथ गौरीपूजा के लिए आई है। और भवानी के मंदिर में जाकर जानकीजी गिरिजा की स्तुति करती है। इतने में एक सखी बाग देखने में पीछे रह गई वो राम-लखन को देख लेती है। और मंदिर में माँ भवानी की स्तुति करती जानकी का हाथ पकड़कर कहा, चलो, गौरीपूजा बाद में भी होगी, पहले राम को देख लो। सखी गुरु की भूमिका निभा रही है कि बयान करने से ब्रह्म समझ में नहीं आयेगा। गुरु वो है, जो केवल वर्णन न करे, सन्मुख कर दे। शरत इतनी, गुरु के पीछे चलना होगा। जानकी तो जगदंबा है लेकिन रामदर्शन करना है तो ये क्रम, बुद्धपुरुष आगे हो। ये सखी बुद्धपुरुष है। जिसने देखा है वोही दिखा सकता है। जागा हो वोही जगा सकता है। जानकी जाती है। तुलसीदासजी ने बहुत सुंदर शृंगार का वर्णन किया है। यहां तुलसी एक बिलग ढ़ंग के कवि के रूप में प्रगट होते हैं।

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि ।
कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि ।।

जानकी जल्दी-जल्दी राम को देखने के लिए चली, कोई कैल का पता आड़ में आ जाता है तो हटाती है, तो उसके हाथ में जो कंगन है उसकी आवाज़ आने लगी। कहीं झरणा बहता है तो कूद कर जाना पड़ता है तो जानकी कूदती है, उछलती है, तो उसके कटि भाग पर करधनी बांधी है उसकी आवाज़ आने लगी। और फिर तेज गति से चलती है, तो पैरों में जो नूपुर है उसकी आवाज़ आने लगी। राम तीनों आवाज़ सुनते हैं। क्या राम विषयी है? राम मर्यादा पुरुषोत्तम है। लेकिन रस की सृष्टि है यहां। दिमाग ठीक हो तो रस लूंटना कोई पाप नहीं है। बाकी दिमाग ठीक न हो, मन मलिन हो तो सब गुनाह है। और मेरी व्यासपीठ ने तो आप को कई बार सुनाया कि पैर के नूपुर ये आचरण के प्रतीक है कि आदमी की चलन कैसी है। हाथ का कंगन ये समर्पण का प्रतीक है। और करधनी, कटिमेखला ये संयम का प्रतीक है। साधक का संयम, साधक का समर्पण और साधक का सदाचरण हम को भी साधक की ओर आकर्षित करता है कि ये कौन आया?

तो, प्रभु देखने लगे। इतने में वो जानकी को देखने लगे। मानवीय मनोभावों को चित्रित करते हैं तुलसी, देख लखन, ये जनककन्या है जिसके लिए इतना बड़ा धनुषयज्ञ हो रहा है और जिसकी अलौकिक शोभा देखकर मेरा पवित्र मन इसके प्रति आकर्षित हो रहा है। बड़े सुंदर मनोभावों का ये व्यापार हुआ है यहां। अब जानकी साथ सखियां है। धर्मशील नगरी की ये कन्या है। क्या सूक्ष्म भावों का तुलसी की लेखनी निरूपण कर रही है!

लोचन मग रामहि उर आनी ।

मानी सीता आंतर् दर्शन करने लगी। और फिर राम को देखते-देखते जानकीजी परवश हो जाती है। भावों में डूब जाती है। चतुर सखी को लगा कि अब ज्यादा सीता यहां रहे ठीक नहीं। इसीलिए समय पर सचेत करती है। जानकी क्या करती हैं? झरने के बहाने, पत्ते के बहाने, लता-पत्ता के बहाने पीछे देख लेती है। मतलब क्या? केवल मूर्ति में ही हरि मत देखो। झरने के बहाने भी हरि को देखो, पत्ते के बहाने भी हरि को देखो, कोयल की कुहुकार में भी हरि को देखो, मयूर के नर्तन में भी हरि को देखो। ये सब परमात्मा के ही संदेश लेकर हमारे सामने खड़े हैं। इन निमंत्रण को साधक कुबूल करें।

जानकी सखीओं के संग फिर भवानी के मंदिर में आई। और उसने पार्वती की स्तुति की। भाव से स्तुति की जानकी ने जगदंबा-पार्वती की। गोस्वामीजी कहते हैं, विनय-प्रेम के आधीन होकर मूर्ति हिलने लगी, मुस्कुराई और मूर्ति बोली। मूर्ति बोल सकती है! हमारे लिए कुछ बात असंभव है इसीलिए उसको सिद्धांत मत बना लो। आशीर्वाद दिया पार्वती ने, 'जो तुम्हारें मन में बस गया सो तुम्हें मिलेगा।' जानकी सखीओं के संग माँ के पास आई और फूल लेकर राम-लक्ष्मण गुरु के पास आये। रात गई और उसके बाद दूसरे दिन धनुषयज्ञ का प्रसंग आता है। उसकी चर्चा मेरी व्यासपीठ कल करेगी।

शंकराचार्य कहते हैं, इधर-उधर हर जगह विष्णु है। छोड़ ये भेद! को शत्रु? को मित्र? ऋग्वेद के अष्टमंडल में एक बहुत बड़ा शब्दमंगल है, 'विश्वमानुष।' इस धरती को अब ऐसे आदमी की जरूरत है जो विश्वमानुष हो। हिन्दुस्तानी हो उसका गौरव हम जरूर लें लेकिन केवल हिन्दुस्तानी न बन रहे, हम 'विश्वमानुष' बने। हम प्रांतवादी न बने, हम केवल संप्रदायवादी न बने, हम जातवादी न बने, हम भाषावादी न बने। कितनी सनातन उद्घोषणा अष्टमंडल में हुई! तब से भारतीओं की आत्मा ये ही आवाज़ दे रही है कि विश्व में विश्वमानव होना चाहिए।

मानस-विष्णु भगवान

॥ ८ ॥

'रामचरित मानस' इतिहास नहीं है, भरपूर अध्यात्म है

जिज्ञासा तो रोज बहुत आती है। सीतेशरणजी ने लिखा है, 'बापू, जो आप ने फोन पर बताया था वो सब मैं कर रही हूं। अब मैं महसूस कर रही हूं कि अब मैं अच्छी बन रही हूं।' अब सीता की शरण में रहेगी वो तो निर्मल मति ही होगी!

ताके जुग पद कमल मनावउँ।
जासु कृपा निरमल मति पावउँ।।

अपना अनुभव सीतेशरणजी ने कहा है। अच्छा हिन्दी लिखती है, हिन्दी बोलती है, जानती है! और मुझे बहुत मदद की है। जब हिन्दुस्तान से मेरी पहली यात्रा विदेश की हो रही थी इस युरोप-अमरिका की और तब मैं एयर इंडिया की फ्लाईट में था मुंबई से जा रहा था वेनकुअर। तब तो अकेला ही जाता था। और संयोगवश जहां मैं बैठा था, सीतेशरणजी की सीट भी वहीं बगल में आई। मैं पहचानता नहीं लेकिन मुझे बहुत अच्छा तब लगा कि खाना परोसा गया और सीतेशरणजी ने खाना लेकर अपनी डिब्बी से तुलसी का पत्र निकाला! और हवाई जहाज का खाना था उसमें तुलसीपत्र डालकर उसने-

तुम्हहि निबेदित भोजन करहीं।
प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं।।

मैंने कहा, लो, ये तो जम गई बात! फिर मैं न्यूयोर्कपहूंचा। कोई रिसिव करनेवाला था नहीं! न खुद के पास कोई डोलर थे, पांच-दश डोलर थे! और देर से फ्लाईट पहूंची। फ्लाईट मिस कर गया टोरन्टो की! अब जाये तो जाये कहां? आप ने बहुत दौड़धाम करके काउंटर पर पहूंचाया। फिर हमारे घाटकोपर के महेन्द्रभाई, वो मुझे मिल गये, 'कोई मुश्किल है?' मैंने कहा बड़ी मुश्किल है! फ्लाईट चुक गया हूं। पैसे है नहीं, जाये कहां? तो उसने अपने क्रैडिट कार्ड पर मेरी टिकट बूक करवाई फिर मैं रात को टोरन्टो पहुंचा। तो, सीतेशरणजी तब से कथा भी बहुत सुनती है। और विदेश में एक भी कथा मिस नहीं करती! ये कथारस है उसका प्रभु कृपासे। एक दूसरी जिज्ञासा है,

मस्जिद में मुल्ला बांग पुकारे, क्या मेरा खुदा बहरा है?
कीडी के पैर में नेपुर बाजे, वो भी मेरा अल्लाह सुनता है।

उपरोक्त दोहा गायक कलाकार चिल्ला-चिल्लाकर तारसप्तक में क्यों गाते हैं? क्या उन्हें अपने भजन पर विश्वास नहीं है? कृपया हो सके तो समझाईये। -गिरधर भानुशाळी। देखो, परमात्मा इन्द्रियातीत है। उसको हमारे-आप जैसी इन्द्रियां नहीं है। इसीलिए यदि आप मुझे पूछते हैं तो, न परमात्मा सुनता है, न परमात्मा बहरा है। ये सभी इन्द्रियों का द्वन्द्व जो

सापेक्ष है वो जिसको लागू होता है। बिना कान सुन लेता है; बिना पैर चलता है; बिना हाथ काम करता है; बिना निगाहें देखता है; बिना बदन स्पर्श करता है। इसीलिए तुलसी शब्द प्रयोग करते हैं, 'अलौकिक करनी।' लेकिन कबीरसाहब ने ये बात कही है, क्योंकि पुकार, प्रार्थना, बंदगी एक यंत्रवत् हो जाय तब कबीर ने लाठी उठाई है कि चींटी के पैर का नूपुर भी सुन लेता है! गाने में कोई तारसप्तक से गाये वो तो गाने की विद्या है। ये तो अच्छा लगता है। मैं तो रसपक्ष में हूं। लेकिन यहां जो चिल्ला-चिल्लाकर बोलना और ये जो खोखला स्नेहमुक्त कर्मकांड, पुकार, उसके बारे में चुटकी ली होगी कबीर साहब ने! लेकिन कोई गानविद्या में भाव से चला जाय तारसप्तक में ये तो एक अच्छा है मेरी दृष्टि से।

'क्या भरोसे में भी स्टेप्स होते है या नहीं?' नहीं। भरोसे में कोई स्टेप्स नहीं होते हैं। भरोसा, भरोसा है। ये करो, ये करो, ये करो, ये करने के बाद भरोसा जन्मे ऐसी बात नहीं है। भरोसा बुनियाद है। वहीं से कई स्टेप निकल सकते हैं। भक्ति के सभी लक्षण भरोसे से प्रसव पाते हैं।

बिनु बिस्वास भगति नहिं ।

किसी भी बात को समझना वो ज्ञान है। लम्बी-चौड़ी हम ज्ञान की परिभाषा क्या करें मेरे भाई-बहन, लेकिन मैं इतनी ही बात जानूं और आप को सुनाउं कि एक बात को ठीक से समझ लेना वो ज्ञान है और समझने के बाद उसका स्वीकार कर लेना वो भरोसा है। और बीच में एक बात ओर भी कह दूं। कल भी हमारी चर्चा हो रही थी कि 'बापू, आप दो-तीन बार बोले हैं, पहले भी बोले हैं कि मैं बोलता नहीं हूं, मैं सुनता भी हूं।' कुछ बातें बोलनेवाले को भी सुननी पड़ेगी। तभी घटना घटेगी। कभी-कभी लोग मेरे पास आते हैं कि बापू, आप जो बोल रहे हैं वो हम भी कहने जा रहे थे! क्या मतलब? भीतर से आप की आत्मा बोलने जा रही थी। आप ने अपने होठों का उपयोग नहीं किया, व्यासपीठ ने कर लिया! श्रोता तभी सार्थक है जब वो भी अंदर से बोलता है। और वक्ता तभी सार्थक है जब अंदर से वो सुनता हो। इसी संदर्भ में मैं बोल रहा हूं कि मैं कथा बोलता तो हूं लेकिन सुनता भी हूं; यस। सुननेवालों को महसूस करना पड़ेगा कि मेरे अंदर मैं बोल रहा हूं। बोलनेवालों को महसूस करना पड़ेगा कि मैं सुनता भी हूं।

आज एक अच्छा प्रश्न है, मैं उसको पहले ले लूं। 'बापू, आप इस कथा में नाम के बारे में ज्यादा बोल रहे हैं। नाम के बारे में जो कहा जा रहा है वो सही में नाम इतना बड़ा है कि नाममहिमा की अतिशयोक्ति है?' अच्छा सवाल है। मैं जवाब नहीं दूंगा इसका, तुलसी देंगे। मैं यहां से बातें कर रहा हूं ये व्याख्या है कि अनुभूति है, कौन निर्णय करेगा? व्याख्या होगी तो बहुत काम की नहीं है। अनुभूति होगी तो इससे उत्तम कुछ नहीं।

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना।
सत हरि भजनु जगत सब सपना।।

आचार्यों ने तो अपने अनुभव की उद्घोषणा की। तुलसीदासजी एक पंक्ति लिखते हैं 'मानस' में। ये अच्छा प्रश्न है इसीलिए मैं आप को इसकी ओर लिए चलूं। इस पंक्ति का अर्थ लगाना भी बहुत कठिन है। गुरुमुख चाहिए। भाषांतर करने पर समझना जरा मुश्किल है।

प्रौढ़ि सुजन जनि जानहिं जन की।
कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मन की।।

मुझे बरारब याद है। इस पंक्ति पर मेरे तीन दिन दादा ने क्लास लिए थे। मेरी स्मृति लौट आ रही है इसी के प्रसाद से। लगातार इस पंक्ति चली तीन दिन। अब क्या अर्थ करें? तुलसीजी कहते हैं, हे प्रौढ़ जन, हे सज्जन, हे ज्ञानजा, मेरे जैसे दास की बात सुनकर कृपया ऐसा मत सोचना कि तुलसी बढ़ाचढ़ाकर बोल रहा है।

तुलसी केवल व्याख्या कर रहे हैं, अनुभव नहीं कह रहे हैं। 'जनि' में ये सब अर्थ निहितार्थ है, ऐसा मुझे समझाया जाता था। फिर तुलसी आत्मनिवेदन करते हैं-

कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मन की।

मेरे मन की तीन अवस्था। तुलसी कहते हैं वो मैं आप से कह रहा हूं। मन की तीन अवस्था की बात तुलसी ने की। 'रामचरित मानस' केवल इतिहास नहीं है, भरपूर अध्यात्म है। वाल्मीकि का 'रामायण' इतिहास है, तुलसी का 'रामायण' इतिहास होते हुए भी पूर्ण अध्यात्म है। वाल्मीकि केवल मानवीय राम को पेश करते हैं, तुलसी मानवीय राम और ईश्वरीय राम दोनों को पेश करते हैं। तुलसी का ये जुगपद निर्वाह हैं। वाल्मीकि का राम प्योर मानव है, प्योर। इसीलिए वोही वाल्मीकि 'योगवाशिष्ठ्य' में राम को अज्ञानी कहते हैं, 'राम तू अज्ञानी है।' वाल्मीकि का राम प्योर इन्सान है। तुलसी का राम इन्सान होते हुए प्योर ब्रह्म है, प्योर ब्रह्म है, प्योर ब्रह्म है। परिपूर्ण शुद्ध ब्रह्म है।

तो, तुलसी अपने मन की तीन अवस्था पेश करते हैं। 'कहउँ प्रतीति', पहली बात, मैं मेरा भरोसा कह रहा हूं कि रामनाम ये है। और पहला भरोसा है, उसके कोई स्टेप नहीं है। यात्रा तो औपचारिकता है। वही ही परमात्मा है। भगवान भरोसा का बच्चा है। भरोसा उसको लौरी सुनाता है। भरोसा परमात्मा को बड़ा करता है। भरोसा परमात्मा को शून्य से विराट कर देता है। भरोसा है बीज़। इसमें से वट विश्वास भरोसें का वृक्ष पनपता है।

बटु बिस्वास अचल निज धरमा।

इसी बटवृक्ष के नीचे विश्वास बैठता है। तो भरोसा है प्रारंभ, भरोसा है अंत, भरोसा है मध्य। भरोसा है भक्ति का बाप। मैं आप से बहुत दिल से निवेदन करता हूं। आप को जप करने की जरूरत नहीं; तप करने की जरूरत नहीं; यज्ञ करने की जरूरत नहीं; आसन की जरूरत नहीं; प्राणायाम की जरूरत नहीं; प्रत्याहार की जरूरत नहीं; यम की, नियम की जरूरत नहीं; धारणा, की ध्यान की, समाधि की जरूरत नहीं। केवल भरोसा रखो।

युवान भाई-बहन, आप योगा करो, बहुत अच्छी बात है। कई महापुरुषों ने अपने-अपने ढ़ंग से योग के बारे में प्रकाश डाला। करो; लेकिन यदि न कर सको, तो चिंता नहीं। मैं योगा नहीं करता। मुझे आता नहीं है। मैं चुपचाप बैठता हूं रातों अग्नि के पास। मेरी मौज। योग अद्‌भुत है, योग विज्ञान है। ओशो ने पतंजलि भगवान को आंतर्‌जगत का वैज्ञानिक कहा था। अवश्य, ये सही है। कोई योगा करे तो अच्छी बात है। छोड़ना मत मेरी बात सुनकर कि बापू नहीं करते! बापू तो किसी की निंदा भी नहीं करते। यदि मेरे से ही सीखना है तो यही सीखो ना! बापू किसीका द्वेष नहीं करते। और जब मैं किसी का द्वेष, निंदा करूंगा, व्यासपीठ छोड़ दूंगा! मेरा बल है ये। इसी बल पर चल रहा हूं। 'बापू योगा न करे तो हम भी न करे!' नहीं; आप करो। और मेरा सब कुछ करना है तो ये भी करो। क्रोध न करो; दूसरों का अपमान न करो; मुंह चढ़ाकर न बोलो; ताना मत मारो; मेरी तरह विनोद करो, मौज करो। करना है तो ये भी करो।

योग बहुत अच्छी बात है। ध्यान करो ये भी अच्छी बात है लेकिन यदि न हो तो चिंता नहीं। मैं ध्यान भी नहीं करता। मैं कोई विधिवत् जप भी नहीं करता। मेरा सुमिरन होता है। मैं कोई तप नहीं करता। तप तो क्या यार, उपवास तक नहीं करता! युवान भाई-बहनो, विश्व में ओर कोई तप नहीं, आज की सदी में। तप की व्याख्या महान है, अवश्य। मैं शास्त्रों को अनदेखा नहीं कर सकता। तप अपनी जगह है। लेकिन आज के युग में तप है जो परिस्थिति आये उसको मुस्कुराते सहन करो। जीवन में शांति रखो वो जप है। संताप, उग्रता, विक्षिप्त

दशा में लाख जप करोगे तो भी जप नहीं माना जायेगा। सहन कर लेना, समझकर विपरीत परिस्थिति के विष को पी जाना मुस्कुराते हुए सीख ले। और सहन करना सीख ले तो कंकर भी शंकर बन जाता है उस समय। जीव शिव में परिवर्तित हो जाता है। सुख भोगनेवालों को दुःख के लिए तैयार रहना चाहिए। सन्मान पानेवालों को तिरस्कार की तैयारी रखनी चाहिए। सापेक्ष है, द्वंद्वात्मक जगत है ये। आदमी की बोली पर न जाओ इनमें अंदर बैठा जो धड़कता हुआ प्रेमपूर्ण हृदय है उसकी पहचान की जाय। बशीरसाहब के कुछ शे'र है मेरे पास। मैं लिखकर आया हूं।

किताबें रिसा ले न अखबार पढ़ना,
मगर दिल को हर रात एक बार पढ़ना।

किताबें, पत्रिकायें अखबार ये बाहर के अभिप्राय को छोड़! कभी रात में एक बार तेरे दिल की आवाज़ तो सुन कि दिल क्या कहता है? शास्त्र, शास्त्र, शास्त्र, शास्त्र! ओशो रजनीशजी का एक सूत्र है, 'शास्त्र सिद्धांत दे सकता है, समझ नहीं दे सकता।' समझ केवल अपना बुद्धपुरुष ही दे सकता है, अपना सद्‌गुरु ही दे सकता है।

किताबें किताबें किताबें किताबें!
कभी तो वो आंखें ओर रुखसार पढ़ना।

कभी तो किसी बुद्धपुरुष की आंख और उसकी भाव भंगिमा को पढ़! किताबें, किताबें, किताबें!

तो बाप, शांति रखना जप है। सहन करना तप है। किसी से आशा नहीं करना वो आसन है। यम क्या है? सोच समझकर बोलना। सुनने जैसा सुनना, योग्य व्यक्ति के संग बैठना, ऐसा अपने आप निर्मित किया संयम ही यम है। पतंजलिवाले यम की चर्चा मैं नहीं कर रहा हूं। और नियम क्या है? जो नियम-व्रत दूसरों को तुच्छ समझने लगे वो काहे का नियम? नियम है सहजता। और व्रत कौन सा? मौनव्रत। ज्ञान क्या? समझ। विश्वास क्या? स्वीकार करना। विराम क्या? विश्व में जो राग लगा है वहां से विगतः राग हो जाये, विश्वनाथ में विशेष राग हो जाये, उसीका नाम विराग। कृष्ण कहते हैं, सब से आसक्ति छोड़, मेरा आसक्त हो जा। ये विराग है। परम शुभ को पकड़ना विराग है। ध्यान क्या? अपनी जिम्मेदारियां निभाना यही ध्यान है। अपने कर्तव्य बोध को चुके ना, यही ध्यान है। धारणा क्या? किसको धारण करना है? तो ज्ञान है समझना, विश्वास है स्वीकार करना।

तो, रामनाम की जो तुलसी महिमा गा रहे हैं वो अर्थवाद नहीं है। पिटीपिटाई व्याख्या मात्र नहीं है। ये तो, 'कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मन की।' फिर दूसरी अवस्था, प्रीति। और मेरी ज्ञान में रुचि नहीं है। 'रुचि मन की।' मेरी आंसू में प्रीति है। और ध्यान देना, अणु से भी ज्यादा शक्ति है आंसू में। अणु जगत का संहार कर सकता है, एक भक्त का आंसू परमात्मा का सर्जन कर सकता है।

दूसरा प्रश्न, 'जैसे हनुमान और शिव अभी भी है वैसे विष्णु भगवान भी है?' है। विष्णु भगवान भी है। जनम है, मृत्यु भी है, बीच में जीवन भी है। जनम है ब्रह्मा, मृत्यु है शंकर, जीवन है विष्णु। विष्णु है, है, है। किसी भी रूप में। एक प्रश्न ओर भी मेरे पास है, 'बापू, भगवान विष्णु का एक नाम श्रीरंग है, इसके पीछे क्या कारण है? कृपया इस पर कहे।' भगवान श्रीरंग है। एक, जिस परमात्मा में श्री रंग गई। लक्ष्मी चपला है। चंचल है लेकिन जिस ठाकुर में श्री को भी रंग जाने की इच्छा होती है वो विष्णु है। अथवा तो श्री प्राप्त होने के बाद भी जिसका रंग बदला नहीं वो श्री रंग है। वर्ना श्री आने के बाद रंग बदलने की संभावना है। लेकिन श्री आने बाद भी जिसके जीवन का ढ़ंग न बदला, रंग न बदला ये तत्त्व पालकतत्त्व है। मैं आप से निवेदन करूं कि भगवान विष्णु के चरणों मे दो तत्त्व हैं। एक है लक्ष्मी, दूसरी है गंगा।

भगवान विष्णु, श्रीरंग वो है जिसके चरण में लक्ष्मी भी है और गंगा भी है। गंगा का उत्पत्तिस्थान शायद श्रीपद माना गया है। इसका मतलब ये हुआ कि भगवान विष्णु के पास लक्ष्मी भी है और लक्ष्मी गंगा की तरह बहती भी है। लक्ष्मी की पवित्रता भी है इन चरण में । और लक्ष्मी भी है, गंगा भी है फिर भी उसको कभी इतनी महत्ता का गुरुर नहीं आया वो श्री रंग है। दुनिया के कोई रंग उसको बिरंग नहीं कर सकता वो श्रीरंग।

तो, चरणों में गंगा-लक्ष्मी। हृदय में भृगुपद और सिर पर शंकरपद। विष्णु शंकर के उपासक है। ये बड़ा मुश्किल मामला है सब! कभी तुलसी उसको शंकर के उपासक मानते हैं, कभी शंकर को विष्णु का उपासक मानते हैं। तत्त्वतः सब एक है। एक आदमी घर में किसीका बाप है, किसीका भाई है, किसीका पति है, ओफिस में बोस है, किसीका मित्र है। एक ही व्यक्ति कितने रूप में मिलता है! मैं आप से यही निवेदन करूं कि अपने अनुभव पर ही जीना साहब! दूसरे की उधार पर मत जीना। लेकिन आप जिंदगीभर अनुभव न कर सके, भरोसा न कर सके तो फिर किसी बुद्धपुरुष के वचन पर भरोसा करना चाहिए। वर्ना जीवन चला जायेगा यार! आप की आंतर प्रतीति कहे कि यहां से कभी धोखा नहीं होगा, ऐसे कोई शिव, ऐसे कोई विष्णु, ऐसे कोई ब्रह्मा, उस पर भरोसा कर लेना। और जब कोई तर्क, कोई संशय न बचे तब समझना कि हम भरोसे कि भूमिका पर है।

हरि हर पद रति मति न कुतरकी।
तिन्ह कहुँ मधुर कथा रघुबर की।।

भगवान की कथा तभी मधुर लगेगी, चाहे शिव की कथा हो, चाहे विष्णु की हो। तो, किसी बुद्धपुरुष का भरोसा हो, उसकी प्रीति हो, उसकी रुचि हो। यदि हमें वहीं भरोसा है तो उसके अनुभव को अपना अनुभव बनाने की चेष्टा करें। अपना दीया उस ज्योति से जलायें।

मैं आज वेदमंत्र लाया था। तो मुझे कहना था वेदमंत्र आज। लेकिन जो बोले सो हरिकथा! जो आये सो हरिकथा। मौज करना है, और क्या करना है? ठीक है? तो वेदमंत्र उसकी आज व्याख्या तो नहीं होगी, लेकिन उसका उच्चारण तो करवाउं। ये भी ऋग्वेद का मंत्र है-

मधु वाताऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः।।
मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः।
मधु द्यौरस्तु नः पिता।।
मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः।
माध्वीर्गातो भवन्तु नः।।

इसका अर्थ ऐसा मैंने पढ़ा कि 'ऋतायते' मानी ऋत के मुताबित जो जीवन जीता है। हमारे यहां उपनिषद में दो

'रामचरित मानस' केवल इतिहास नहीं है, भरपूर अध्यात्म है। वाल्मीकि का 'रामायण' इतिहास है, तुलसी का 'रामायण' इतिहास होते हुए भी पूर्ण अध्यात्म है। वाल्मीकि केवल मानवीय राम को पेश करते हैं, तुलसी मानवीय राम और ईश्वरीय राम दोनों को पेश करते हैं। तुलसी का ये जुगपद निर्वाह हैं। वाल्मीकि का राम प्योर मानव है, प्योर। इसीलिए वोही वाल्मीकि 'योगवाशिष्ठ्य' में राम को अज्ञानी कहते हैं, 'राम तू अज्ञानी है।' वाल्मीकि का राम प्योर ईन्सान है, तुलसी का राम ईन्सान होते हुए प्योर ब्रह्म है, प्योर ब्रह्म है, प्योर ब्रह्म है। परिपूर्ण शुद्ध ब्रह्म है।

शब्द आये 'ऋत' और 'सत्य'; 'ऋतं वदिस्यामि, सत्यं वदिस्यामि', आदि-आदि। यहां ऋषि ये कहना चाहता है कि जिसके विचार में ऋत है, जिसके उच्चार में भी ऋत है, जिसकी सोच में भी सत्य है ऐसी कोई पकी हुई व्यक्ति, ऐसे कोई बुद्धपुरुष को किसी भी प्रकार का वायु आयेगा उसको मधुर लगेगा। उसके लिए समुद्र की लहरें मधुर हो जायेगी। उसके लिए समस्त औषधियां मधुर हो जायेगी। उसके लिए पृथ्वी-रजकण जो कहो, ये सब मधुर हो जायेंगे। आकाश मधुर हो जायेगा। पिता मधुर हो जायेगा, माँ मधुर हो जायेगी। वनस्पति मधुर हो जायेगी, सूर्य मधुर हो जायेगा। उनके आंगन में रखी हुई गायें भी मधुर हो जायेगी। कुल मिलाकर जिन्होंने ऋत जाना, जिन्होंने ऋत के अनुसार जीना शुरू किया उसके लिए ऋग्वेद भगवान कहते हैं, सब मधुर ही मधुर हो जाता है। और वो सत्य क्या है? रामनाम सत्य है। हरिनाम सत्य है। वो जिसने जाना उसके लिए पूरा अस्तित्व मधुर हो जाता है, कटु रहता ही नहीं।

गरल सुधा रिपु करहिं मिताई।
गोपद सिंधु अनल सितलाई।।

'मानस-बिष्नु भगवान' की कथा को यहां रखते हुए थोड़ा कथा का क्रम निभा लूं बचे समय में। पुष्पवाटिका में जानकी ने स्तुति की। और फिर धनुषयज्ञ का दिन है। विश्वामित्र सह राम-लक्ष्मण मुनि मंडली के साथ धनुषयज्ञ में आते हैं। एक के बाद एक राजा धनुष तोड़ने के लिए असफल! कोई राजा धनुष नहीं तोड़ सका! राजा अहंकार नहीं तोड़ सका! तुलसी कहते हैं, सब मूढ़ थे। और मूढ़ता उसीमें ही होगी, जहां अहंता होगी। अहंकारी आदमी मूढ़ होता है। और दुनिया में सब को समझाना आसान है, मूढ़ को समझाना मुश्किल है; बहुत मुश्किल है; और अहंकार जब तक गिरे ना तब तक जानकी प्राप्त नहीं होती, भक्ति नहीं मिलती। इसीलिए गंगासती कहती है-

भक्ति रे करवी तेने रांक थइने रे'वुं पानबाई,
मेलवुं अंतरनुं अभिमान रे;

जिसको पता लग जाता है कि मैं अज्ञानी हूं वो ज्ञानी होने की शुरूआत है। मैं कुछ नहीं जानता हूं, वो जानने का प्रथम कदम है साहब! कंगाल और कायर नहीं, स्वभाव रांक रखो। आख़िर में भगवान विश्वामित्रजी रामजी को आदेश देते हैं। और आप जानते हैं कि भगवान राम धनुष भंग कर लेते हैं। राम अपने ईष्ट का धनुष उठा लेते हैं लेकिन स्मरण करते है गुरु का। जिसके साथ गुरुकृपा होगी वो अहंकार तोड़ सकता है और जो अहंकार तोड़ देता है उसको भक्ति प्राप्त हो सकती है। भगवान ने धनुष भंग किया। जानकीजी आई। जयमाला समर्पित की। इतने में भगवान परशुराम का आगमन होता है। फिर परशुराम-राम संवाद हुआ है; राम-राम संवाद। आख़िर में परशुरामजी नव बार जयजयकार करते हुए विदाय लेते हैं। साहब, शंकर का धनुष तोड़ा ये तो एक स्थूल प्रक्रिया थी लेकिन महाराज परशुरामजी की बुद्धि में क्रोध के कारण जो मूढ़ता आ गई थी वो मूढ़ता तोड़ डाली और बुद्धि के पटल खुल गये! मूल काम तो यही था कि एक ऋषि की मूढ़ता टूटे।

यहां विश्वामित्र के कहने पर दूतों को पत्र लेकर अयोध्या भेज दिये गये। महाराज दशरथजी बारात लेकर मिथिला आते हैं। और 'मंगल मूल लगन दिनु आवा।' मागसर शुक्ल पंचमी गोरज बेला के समय भगवान राम की, दुल्हे की सवारी निकलती है। धामधूम से मिथिला में चारों भाईओं का ब्याह संपन्न होता है। रास्ते में मुकाम करते-करते ये बारात अयोध्या आती है। धीरे-धीरे अतिथिगण विदा होने लगे। आख़िर में विश्वामित्र महाराज को विदा देने का समय आया। पूरा राज परिवार खड़ा रहा और कहने लगे-

नाथ सकल संपदा तुम्हारी।
मैं सेवकु समेत सुत नारी।।

करब सदा लरिकन्ह पर छोहू।
दरसनु देत रहब मुनि मोहू।।

मुझे ये मुनिजी की रीत बहुत प्यारी लगती है कि दशरथजी का काम था तब तक रहे, लेकिन काम पूरा हुआ तो ऋषि अपने भजन के क्षेत्र में लौट गये। और वो पैदल आये थे, गये तब भी पैदल गये! ये फकीरी, ये भी अपनी रीत है। 'बालकांड' को विराम दिया। उसके बाद 'अयोध्याकांड' की कथा आती है जिसमें रामजी का वनवास हुआ। राम-लक्ष्मण-जानकी चित्रकूट निवासी बने। बीच में महाराज दशरथजी का प्राणत्याग। भरत आये, पादुका लेकर लौटे। पादुका को सिंघासन पर स्थापित करते भरत ने प्रेमराज्य का श्रीगणेश कर दिया। भरत के चरित्र और प्रेम की कथा सुनाते हुए, तुलसी ने 'अयोध्याकांड' भी पूरा कर दिया।

'अरण्यकांड' के आरंभ में भगवान स्थळांतर करते हैं। अत्रि के आश्रम में आये। ऐसे प्रभु की यात्रा आगे बढ़ती है। कुंभज ऋषि के आश्रम में राम-लखन-जानकी आये। मंत्रणा की, पंचवटी आप जाओ। भगवान रास्ते में गीधराज जटायु से मैत्री करके गोदावरी के तट पर रहे। वहां शूर्पणखा आई। इससे पहले प्रभु ने नरलीला का निर्णय कर लिया था। मारीच को लेकर रावण आया। जानकी का अपहरण हुआ। भगवान जानकी के वियोग में रोते, खोजते, जटायु का उद्धार करते कबंध को गति देकर शबरी के आश्रम में आये। उसके बाद प्रभु पंपा सरोवर आये और वहां 'अरण्यकांड' पूरा हो गया।

'किष्किन्धाकांड' में भगवान और हनुमानजी मिले। सुग्रीव से मैत्री। 'वाली प्राण कर भंग।' भगवान का प्रवर्षण बास और चातुर्मास के बाद सीताशोध का अभियान। यहां खोजते-खोजते सब स्वयंप्रभा से मिलते हैं। समंदर के तट पर संपाति से मिलते हैं। संपाति ने मार्गदर्शन किया और सुना कि जानकी अशोकवृक्ष के नीचे लंका में है। सब ने अपने बल का उद्घोष किया। हनुमानजी चुप है, जामवंतजी ने उसको आह्वान किया कि राम के कार्य के लिए ही तो आप का अवतार है। और हनुमानजी महाराज वयोवृद्ध जामवंत का मार्गदर्शन लेकर लंका जाने के लिए प्रस्तुत। और 'सुन्दरकांड' के आरंभ में हनुमानजी निकले हैं। विघ्न को पार करते-करते हनुमानजी लंका पहुंचते हैं। विभीषण से मैत्री होती है और जानकी तक पहुंच जाते हैं। भूख लगी। फल खायें, तरु तोड़ें। अक्षयकुमार आया। अक्षय का क्षय हुआ। मेघनाद हनुमान को बांधकर सभा में ले गया। लंकादहन का निर्णय। पूरी लंका उलट-सुलट जला दी! बाबा समंदर स्नान करके माँ के सामने लघुरूप लेकर खड़े हो गये, माँ ने चूडामणि दिया। और हनुमानजी संदेश लेकर लौट गये। सुग्रीव से गाथा सुनाई। और सब प्रभु के पास आये। जामवंत ने हनुमंत चरित्र का गायन किया। हनुमान और राम मिले हैं। संदेश की आप-ले हुई। प्रभु की सेना समंदर के तट पर पड़ाव डालती है। यहां लंका में विभीषण का त्याग किया रावण ने। विभीषण राम की शरण में आया। शरणागत को रखा गया। तीन दिन बीते। फिर समंदर कहता है, यहां सेतुबंध बनाओ। प्रभु को जोड़ने की बात अच्छी लगी। निर्णय लिया गया। 'सुन्दरकांड' को अति संक्षिप्त में विराम दिया गया।

'लंकाकांड' का आरंभ हुआ। प्रभु ने मित्रों को बुलाया कि तैयारी करो, सेतु रचो। और सेतु रचा गया। सुंदर सेतु स्थापित हो गया। वो भूमिका उत्तम जहां से सब को जोड़ने का शिवसंकल्प प्रगट होता हो। वो भूमि हो या भूमिका। व्यक्ति हो या विश्व। जिसकी भूमिका ऐसी हो कि सब को जोड़ो। और वेदमंत्रों के उच्चार के साथ भगवान रामेश्वर प्रभु का स्थापन हुआ। उसके बाद प्रस्थान किया। लंका में आये। सुबेल पर्वत पर परमात्मा ने डेरा डाला। और उसके बाद अंगद गया राजदूत के रूप में। संधि असफल हुई, युद्ध अनिवार्य हुआ। तो, युद्ध का मामला कल निपटा लेंगे हम!

मानस-विष्णु भगवान

।। ९ ।।

'मानस' मोबाइल अस्पताल है,चलता-फिरता औषधालय है

कल कथा के क्रम में भगवान लंका पहुंचे। अंगद संधि का प्रस्ताव लेकर गया। संधि असफल हुई। युद्ध अनिवार्य हुआ। बाप, काल गणना में देखें तो तीन प्रकार के युद्ध लड़े गये हैं। इक्कीसवीं सदी जिसमें हम जी रहे हैं, इसमें चौथा युद्ध है। सतजुगी युद्ध था दो समाज के बीच लड़ा गया; सुर-असुर। फिर त्रेता युगीय युद्ध आया तो दैवी समाज और असुर समाज यानी रावण समाज और राम समाज के बीच लड़ा गया। द्वापर आया तो दो परिवार के बीच युद्ध लड़ा गया, कौरव-पांडव। मेरी व्यासपीठ को लगता है कि अब जो युद्ध है वो सुर-असुर के बीच नहीं, मानव और असुर के बीच में नहीं, दो परिवार के बीच में नहीं, लेकिन हमारे भीतर चल रहा है। हमारे मन में एक युद्ध चल रहा है। तुलसीदासजी ये युद्ध का समाधान प्रस्तुत करना चाहते थे, इसलिए बहुत दीर्घरूप में इसने युद्धकांड का वर्णन किया है। 'मानस' का युद्धकांड इतिहास तो है लेकिन एक संत युद्ध का इतना लम्बा वर्णन करे ये मेरी मानसिकता के अनुकूल नहीं पड़ा। फिर भी तुलसी जब इतने लम्बे अरसे तक युद्ध का वर्णन करते हैं तब उसके रहस्यों को पाने की गुरुकृपा से इच्छा होती है। आज तो मैं इसमें नहीं जा पाउंगा। कभी स्वतंत्र रूप में युद्धकांड पर परमात्मा बुलवाये तो बोलूंगा। लेकिन मैं एक ही सूत्र को लेकर आगे बढ़ूं कि तुलसी के 'रामचरित मानस' का युद्ध अंततोगत्वा जीव को बुद्ध बनने की प्रक्रिया है। बुद्धत्व की उपलब्धि के लिए ये युद्ध लड़ा गया था।

निसिचर कीस लराई बरनिसि बिबिधि प्रकार।
कुंभकरन घननाद कर बल पौरुष संघार।।

आख़िर में रावण इकतीस बाणों से निर्वाण को प्राप्त करता है। प्रभु के तेज में उसका तेज समा जाता है। यहां जानकीजी को प्रभु के पास लाया गया। पुष्पक में बैठ कर प्रभु बिना विलंब अयोध्या की यात्रा करते हैं।

हनुमानजी अयोध्या संदेश देने के लिए जाते हैं। चौदह साल का विषम वियोग समाप्त हुआ। शस्त्र छोड़कर रामजी ने वशिष्ठजी के चरणों में दंडवत् किया। माँ कैकेयी से पहले मिले। फिर सुमित्रा को और फिर माँ कौशल्या को मिले। आनंद छा गया अवध में। वशिष्ठजी ने ब्राह्मणों की संमति लेकर निर्णय घोषित किया कि आज ही राजतिलक कर दिया जाय। राम-जानकी धरती को, दिशाओं को, माताओं को, जनता को, देवता को, ऋषिमुनिओं को प्रणाम करके राज्य सिंहासन पर बिराजमान हुए और सब से पहले रामराज्य का यानी प्रेमराज्य का तिलक भगवान वशिष्ठजी ने किया। दिव्य रामराज्य की स्थापना हुई।

भगवान की मानवीय लीला और ईश्वरीय लीला का संगम है 'मानस।' तो प्रभु का लौकिक जीवन दिखाते हुए कहते हैं समय मर्यादा पूरी होने के बाद सीता ने दो पुत्रों को जन्म दिया, लव-कुश। वैसे ही तीनों भाईओं के घर दो-दो

पुत्र हुए। रघुवंश के वारिसों का नाम दिखाकर रामकथा पर विराम दे दिया। उसके बाद गरुड और कागभुशुंडि का संवाद है। और आख़िर में गरुड सात प्रश्न पूछते हैं। अंतिम प्रश्न था, मानसिक रोग क्या है? हम शरीर के रोग के लिए तो बहुत गंभीर है, होना चाहिए लेकिन मानवी मनोरोग के लिए इतना गंभीर नहीं दिखता! 'मानस' क्या है? मोबाइल अस्पताल है, चलता-फिरता औषधालय है। कोई चूर्ण मिल जाय, मूली मिल जाय, कोई एक पत्ता मिल जाय, जो हम ये स्नेह के साथ ले ले और धन्य हो जाय।

मेरे भाई-बहन, इसीलिए आप बहुत आदर से कथा सुन रहे हैं। लेकिन जैसे-जैसे आप कथा सुनते जा रहे हैं, ओर गहराई में जाईए, ओर अंदर जाईए। एक शे'र है, सुनिये। 'रामचरित मानस' क्या है, समंदर है। 'रघुबीर चरित अपार बारिधि', ये सागर है। इस 'रामचरित मानस' को आत्मसात् करना है तो-

समंदर को समझना है तो उसकी तर्ह पर टहलाकर,
ये तो साहिल है वहां तो मछलियां कपड़े बदलती है।
-बशीर बद्र

शायरी तो देखो! तूझे खाली किनारे-किनारे घूमना है? तुम्हें कोई कपड़े बदलती स्त्रीयों को देखना है कि राम के स्वरूपसिंधु को देखना है?

अमे तो समंदर उलेच्यो छे प्यारा!
नथी मात्र छबछबियां कीधां किनारे।
मळी छे अमोने जगा मोतीओमां,
तमोने फक्त बुद्‌बुदा ओळखे छे।
-शून्य पालनपुरी

तो बाप, 'मानस' के सात प्रश्न में आख़िरी प्रश्न मनोरोग का पूछा गया। तुलसी तो कहते हैं-

हहिं सब कें लखि बिरलेन्ह पाए।

ये मानसिक रोग सब में होता है। ईर्षा, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, फलां, फलां सब में होता है। लेकिन विरल ही इसको पहचान पाता है। और कोई सद्‌गुरु, कोई बुद्धपुरुष के पास जाके इसके लिए गंभीर होता है। सातों प्रश्नों का भुशुंडि ने उत्तर दिया और कथा समापन की ओर जा रही है तब-

बिष्नु जो सुर हित नरतनु धारी ।
सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी ।।

'मानस' में विष्णु के भगत भी है। 'मानस'में विष्णु के द्रोही भी है। 'मानस'में विष्णु विमुख भी है और विष्णु की माया भी है। तो बाप, चार पोईंट पर ध्यान केन्द्रित करें आख़िर में। एक विष्णुभक्त तो पक्का 'रामचरित मानस'में 'लंकाकांड'में है। इससे पहले मैं ये कहना चाहूंगा कि अयोध्या का इष्टदेव श्रीरंग है विष्णु। और लंका का इष्ट नृसिंग है। नृसिंग भी विष्णु का अवतार है। तो दोनों की इष्ट उपासना एक है। लेकिन एक ही उपासनावालें एक ही इष्ट के बिलग-बिलग रूप में संकीर्णता लाये तो युद्ध के बिना क्या होगा? मैं मुरलीवाले कृष्ण को ही मानुं! और दूसरा कहे, मैं सुदर्शन चक्रवाला ही मानुं! तो लड़ाई के अतिरिक्त बचेगा क्या? बुद्ध होने की कोई संभावना नहीं, युद्ध के अतिरिक्त! तो लंका में एक विष्णुभक्त है। तुलसीदासजी लिखते हैं-

नाम बिभीषन जेहि जग जाना ।
बिष्नुभगत बिग्यान निधाना ।।

लंका में जो विभीषण है, उसको विष्णुभगत कहा है।

भवन एक पुनि दीख सुहावा ।
हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा ।।

ध्यान दो, ये लंका में रहा विभीषण इष्ट के रूप में नृसिंग की पूजा करता है, विष्णु की पूजा करता है और नाम राम का लेता है!

राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा ।
हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा ।।

कितना समन्वय कर रहे हैं तुलसीजी! 'मानस' में विष्णुद्रोही है कागभुशुंडि का पूर्वावतार। शिव का उपासक भुशुंडि। 'करउ बिष्नु कर द्रोह।' निरंतर विष्णु का द्रोह करनेवाला आदमी। तो आप को भगत भी

मिलेगा, द्रोही भी मिलेगा। पूर्ण शास्त्र में सब कुछ होगा। एक पूर्ण मकान में शौचालय भी होगा, कीचन भी होगा, गेस्टरूम भी होगा, डाईनिंग होल भी होगा। सब कुछ, जिसको पूर्ण कहते है। तो यहां 'विष्णुभगत'भी है। 'विष्णुद्रोही' भी है और विष्णु विमुख भी है-

सदा रोगबस संतत क्रोधी ।
बिष्नु बिमुख श्रुति संत बिरोधी ।।

'मानस' में आप जानते हैं, चौदह जीवित हो तो भी मरे हुए हैं। उसमें एक है विष्णु विमुख, जीवित हो तो भी मरा हुआ है। विष्णु का द्रोह न हो। भगत न हो पायें तो चिंता नहीं, कहीं द्रोह न हो, कहीं विमुखता न आये। और 'मानस' में हैं-

नारी बिष्नु माया प्रगट।

जहां-जहां माया का वर्णन है वहां विष्णु की ही माया ज्यादातर इंगित की गई है।

तो, भगवान विष्णु से भरा ये शास्त्र। कहां से उठायें, कहां रखें? लेकिन आप से बातें करने में आनंद आया। भगवान विष्णु के नाते हम जरा वैश्विक विचार कर पायें। आप ने विशालता से सुना और हमने विशालता से आप के सामने रख दिया। तो मेरे भाई-बहन, विष्णु का नाम राम है। राम, विष्णु है। शंकर विष्णु की पूजा करते हैं। विष्णु शैव है। शंकर वैष्णव है। 'श्रीमद् भागवतजी' में तो शंकर को परम वैष्णव बताया है।

आज एक प्रश्न है कि 'बापू, आप विचार और बुद्धि का वो करते रहते हैं तो क्या विचार से परमात्मा का प्रागट्य नहीं हो सकता? विचार इश्वर को जनम नहीं दे सकता?' यस, विचार और बुद्धि हरि को जनम दे सकते हैं। लेकिन वो जन्मा हरि लीला तो केवल भाव में ही कर सकता है। बुद्धि इसका पालन नहीं कर पाती। ब्रह्मा सर्जक है। ब्रह्म को विचार प्रगट कर सकता है। ब्रह्म मानी विचार, ब्रह्म मानी राम, लेकिन पालन तो विष्णु ही कर सकता है। आप का ध्यान इसके प्रति शायद गया हो। व्यासजी का एक वक्तव्य है, देवकी बुद्धि है। 'सुमति देवकी।' मुझे प्रणाम करना चाहिए इस वक्तव्य को, देवकी को उसने सुमति कही है। बुद्धि जेल में हो तो भी क्या, इश्वर को प्रगट कर सकती है। देवकी कारागार में है! कृष्ण को प्रगट कर सकी, अवश्य। लेकिन कृष्ण वहां रुका नहीं। एक रात भी नहीं रहा। कहा कृष्ण ने, मुझे गोकुल ले चलो। इश्वर परतंत्रता में भी प्रगट हो सकता है। लेकिन रास तो स्वतंत्रता में ही हो सकता है। फिर बहुत दार्शनिक सिद्धांत मेरे दिमाग में उमड़ आते हैं कि जीवन में परतंत्रता अच्छी है कि स्वतंत्रता अच्छी है? किसको स्वीकार करे? और 'मानस' एक ओर सूत्रपात करता है-

कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं ।
पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं ।।

परतंत्रता पीड़ा है। हनुमानजी को पूछो 'सुन्दरकांड' में कि आप को स्वतंत्रता अच्छी लगती है कि परतंत्रता? हनुमान ने कहा, दोनों। कैसे? कहा, मैं स्वतंत्र था, माँ ने कहा मधुर-मधुर फल खाओ। मैंने खाया। खाने को ही कहा था लेकिन मैं स्वतंत्र था, वृक्ष तोड़ें, शाखायें तोडी, राक्षसों को...! स्वतंत्र! मेरी मौज! लेकिन स्वतंत्र रहनेवालों को चाहिए हनुमानजी ने कहा कि कोई मेघनाद बांध दे तो परतंत्रता में भी मौज करना सीख लें। बांध दिया मेघनाद ने! बंधन बनाकर रावण के सन्मुख पेश कर दिया। कभी राघव ने पूछा, हनुमान, तुझे स्वतंत्रता अच्छी लगती है कि परतंत्रता? बोले, दोनों अच्छी लगती है लेकिन महाराज, स्वतंत्रता से भी लंका में तो मुझे परतंत्रता अच्छी लगी! क्योंकि मुझे लगा कि मैं स्वतंत्र होउंगा तो ये मदद करने नहीं आयेगा। मैं परतंत्र होउंगा तो तू आयेगा या तेरी कृपा आयेगी और कृपा आई! भगवान ने कहा, कृपा आई? बोले, हां! रावण ने

मुझे मृत्युदंड दे दिया, मार दो! और तेरी कृपा आई विभीषण के रूप में, 'नीति बिरोध न मारिअ दूता।' मना कर दिया।

साधक भाई-बहन, जीवन की स्वतंत्रता कि परतंत्रता का चुनाव बहुत मुश्किल लगता है। लेकिन जहां तक मेरी सावधानी गुरुकृपा से है वहां तक जीवन की कोई ऐसी समस्या नहीं है जिसका जवाब 'रामचरित मानस' न देता हो। इसीलिए मेरी व्यक्तिगत समझ में इक्कीसवीं सदी का संपूर्ण शास्त्र 'रामचरित मानस' है। जिसमें हर पहलू का उत्तर दिया गया है। हम खोज पाये या न खोज पाये! है तो सही। गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत तो था। न्यूटन ने खोज निकाला। बात इतनी-सी है।

तो मेरे भाई-बहन, कृष्ण परतंत्रता में जनम लेता है। वहां भी तीन स्त्रियां कृष्ण के जीवन में। देवकी; इधर आया तो रोहिणी; और यशोदा। यहां राम की तीन माताएं कैकेयी, सुमित्रा, कौशल्या। तुलसीदासजी जब राम महिमा लिखने लगे तब उसने कहा-

जन मन मंजु कंज मधुकर से ।
जीह जसोमति हरि हलधर से ।।

तुलसी कहे, मेरा मन कमल बने और तेरा नाम भंवरा बनकर मेरे मन में गुंजारव करे। बिलकुल उल्टा कहता है ये आदमी! जहां 'मानस' में पद-पद पर आप को मिलेगा कि उसके चरणकमल में मेरा मन रहे।

प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना ।
जासु नेम ब्रत जाइ न बरना ।।
राम चरन पंकज मन जासू ।
लुबुध मधुप इव तजइ न पासू ।।

भगवान के चरणकमल में मेरा मन रहे। यहां तुलसी कहते हैं, मेरा मन कमल है, तेरा नाम भंवर हो। मन कमल नहीं है तो बना दे! और इससे भी बहुत रहस्यपूर्ण, दार्शनिकता से भरी आधी पंक्ति है, 'जीह जसोमति हरि हलधर से।' मेरी जीभ जशोदा बन जाये क्योंकि जशोदा को जो फायदा हुआ है वो मुझे हो। देवकी अयोध्या का पात्र नहीं, मथुरा का पात्र है। और मथुरा में आगे भी 'म' है, पीछे भी 'रा' है। हम कारागार में है प्रभु! अंधेरे में है। कंस का कारोबार। तुलसी कहते हैं, देवकी का सारथि कंस बना था। वसुदेव और देवकी पर बहुत प्रभाव पड़ा कि मेरा भाई कितना अच्छा है! लेकिन अहंकारी के सारथिपने पर भरोसा मत करना। आकाशवाणी हुई कि जिसको तू आदर के साथ लिए जा रहा है उसका आठवां गर्भ तेरी मौत होगा। और सारथि बदल गया! सारथि ऐसा बनाना कि कभी बदले ना! गुरु ऐसा बनाना कि जमाना बदल जाय, बुद्धपुरुष न बदले। एक क्षण में सारथ्य कर रहा था, दूसरी क्षण में? तुलसीदासजी हमें संकेत करते हैं कि सारथि बनाना हो तो किसको बनाओगे?

ईस भजनु सारथी सुजाना ।
बिरति चर्म संतोष कृपाना ।।

हरिनाम को सारथि बनाना। परमात्मा का भजन सारथि बने। और परमात्मा के भजन को, परमात्मा के नाम को जब सारथि बनाया तो तुलसीदासजी सीधा इस बात पर 'बिरति चर्म'; 'चर्म' सुरक्षा का प्रतीक है। रामनाम का सारथ्य मिल जाएगा तो आप सुरक्षित हो जाओगे।

एक दिन हनुमान और राम बैठे थे तो रामजी ने पूछा, हनुमान, मेरी समझ में नहीं आया कि तू सुरसा के मुख में क्यों गया? सुरसा के मुख में तो जहर होता है। वो तो सर्पिणी है। लेकिन मैं जान-बूझकर गया। क्यों? तब जवाब दिया, कि आप तो जानते हैं न कि मैं मूल शंकर हूं! मेरी स्थापना आपने की है। हर प्रकार की स्थापना आप के द्वारा हुई है मेरी। बंदर इतना सुंदर बन जाय, स्थापना आप की है। ठीक है न? तो मैं एक बार 'राम राम' बोलकर जहर पी गया था तो राम कृपा से मैं बच गया। तो मैंने सोचा कि 'राम राम' बोलकर जहर के मुख में जाउं, जरा देखूं तो सही क्या माजरा है? जहां विष ही

है। तो बोले, तेरे मुख में 'राम राम' था? बोले, हां, आप ने तो मुद्रिका दी थी-

प्रभु मुद्रिका मेली मुख माहिं ।

अरे साहब! रामनाम मुख में लेकर सुरसाओं के पेट में चले जाओ तो भी सुरक्षित! तो बाप, परमात्मा का नाम, विष्णु का नाम, अल्लाह का नाम, किसीका भी नाम लो। कलियुग है नाम की मौसम। उसका आश्रय हो जिसके चरणों में लक्ष्मी संवाहन करती हो। हमारी कथा, हमारा सूत्र, हमारा हरिनाम, हमारा बुद्धपुरुष हमारी सल्तनत है। ऐसी सल्तनत में हम नव दिन थे। अब जब जा रहे हैं तब इन संपदा को संभालियेगा। और बेंक में पैसे जमा करने से बढ़ता है और हरि की बेंक में हरिनाम जितना बांटो इतना बढ़ता है। मैं ये देखता रहता हूं कि कथा में क्या होता है कि हमारा अच्छापन, हमारा बुरापन सब निकलने लगता है। रामकथा प्रभाव पर काम नहीं करती, स्वभाव पर काम करती है। आप का प्रभाव कैसा उस पर काम नहीं करेगी रामकथा। क्योंकि आप भरे हैं तो जितना भी रामकथा डालेगी, उभर जाओगे। रामकथा स्वभाव पर काम करने का तरीका है मेरे भाई-बहन।

तो, 'मानस-बिष्नु भगवान' जिसको केन्द्र में रखते हुए हमने संवाद रचा, आनंद किया। बाबा भुशुंडि ने कथा को विराम दिया। गरुड पंख फूलाकर वैकुंठ गये। यहां भगवान महादेव और दूसरे याज्ञवल्क्य महाराज भरद्वाजजी के सामने रामकथा को विराम देने जा रहे हैं वो विराम हुआ कि नहीं, परदानसीन है, गुप्त है। मैं तो इतना ही अर्थ करता हूं कि गंगा, यमुना, सरस्वती बहती है वहां ये कथा हुई तो शायद ये कथा जब तक गंगा बहती रहती है, बहती रहेगी। काश, हम सुन पायें! तो बुद्धपुरुष भुशुंडि ने कथा पूरी की, दूसरी शुरू करने के लिए। 'पुनरागमनाय च।' महादेव कथा को विराम देते हुए पार्वती को पूछते है,

देवी! अब आप को कुछ सुनना है? बोले, महाराज, वैसे तो मैं कृतकृत्य हो गई। चंद्र की किरण की समान आप की बोली सुनकर मेरी शरद ऋतु का मध्याह्न का ताप तो मिट गया लेकिन प्यास ओर बढ़ी, ओर बढ़ी, ओर बढ़ी कि ओर सुनूं, ओर सुनूं, ओर सुनूं।

'मानस' में लिखा हैं कि भगवान की कथा सुनते-सुनते जो तृप्त हो जाये तो समझना उसने रस जाना ही नहीं। इसमें अतृप्ति को ही तृप्ति मानना पड़ता है। इसमें प्यास ही संतुष्टि है। महादेव ने कथा को विराम दिया। अब शरणागति के घाट पर बैठे बाबा गोस्वामीजी अपने मन को प्रधान श्रोता बनाकर संतगणों में कथा कह रहे थे, वहां कथा को विराम देते हुए वो कहते हैं-

एहिं कलिकाल न साधन दूजा।
जोग जग्य जप तप व्रत पूजा।।
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि।
संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि।।

तुलसी कहते हैं, भीषण कलिकाल है इसमें हम जैसे लोग ओर कोई साधन नहीं कर पाते। तीन बस्तु करें, राम को सुने, राम को गाये और राम को स्मरे। जिसका नाम पतितपावन है। जिसका नाम जिन्होंने पुकारा ऐसे किस अधमाधम को विश्राम नहीं मिला?

जाकि कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसदासहूँ।
पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।।

तुलसी कहते हैं, मेरा ठाकुर कंजूस नहीं है। वो पूर्ण कृपा कर सकता था लेकिन उसको पता था कि तुलसी बेचारा पचा नहीं पायेगा। इसीलिए रजमात्र कृपा हुई तो मेरे जैसा मतिमंद तुलसी आज 'पायो परम बिश्रामु।'

मेरी सल्तनत मेरा फ़न रहे।
मुझे ताज़ों-तख्त खुदा न दे।।

मुझे परम विश्राम की सल्तनत प्राप्त हुई है। मेरे लिए राम के समान ओर कौन हो सकता है? अब हम और आप सब मिलकर कम्बोडिया देश में, इस विष्णुलोक में भगवान राम की कथा के मिष इक्कठे हुए थे। और आज मेरी व्यासपीठ से भी मैं कथा को विराम देने की ओर अग्रसर हूं तब पूरा आयोजन प्रसन्नता के साथ विराम की ओर जा रहा है। एक छोटी-सी बोधकथा के साथ इस नव दिवसीय कथा को विराम दे दूं।

एक जीर्ण-शीर्ण मंदिर था। सब लोगों ने सोचा कि ये मंदिर कभी न कभी गिरेगा या तो अंदर प्रार्थना करनेवालों को दबा देगा। तो ट्रस्टीओं की मिटिंग हुई और तीन प्रस्ताव पास किये गये। प्रस्ताव पहला, जल्द से जल्द ये मंदिर नया बनाया जाय। सर्वानुमते ठराव पास हुआ। दूसरा प्रस्ताव आया कि ऐसा ही मंदिर बनाया जाय। तीसरा प्रस्ताव आया कि ये बहुत पुराना मंदिर है, उसी जगह पर ही मंदिर बनाया जाय लेकिन ये मंदिर गिराया न जाय। मूढ़ों ने प्रस्ताव पास किया! बाप, मैं इतना कहकर बिदा लूंगा कि नया स्थापित करने के लिए पुराना गिराना होगा। अन्यत्र कर सकते हैं। लेकिन उसी जगह ही आप को नया मंदिर बिल्ट करना है और आप प्रस्ताव करे कि इसी जगह हम मंदिर बनाये लेकिन उसको गिरायें नहीं तो मूढ़ता के अतिरिक्त कुछ नहीं है! हमें हमारे दिल में नवसर्जन करना है; मन को सुमन बनाना है; बुद्धि की शुद्धि करनी है; चित्त को एकाग्र करना है और अहंकार से क्रमशः दूर जाना है तो उसी ही बुराइओं को रखते हुए वहीं ही नहीं बिल्ट होगा। वहीं बनाने के लिए वो ही दिल में एक नया सर्जन करना होगा। और ये सर्जन होगा रामनाम से। 'भज गोविंदम्, भज गोविंदम्, भज गोविंदम्', क्योंकि नाम लो तो रूप की चिंता मत करो, रूप आयेगा। तुलसी ने कहा है, रूप नाम के आधीन है।

रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना।

और जहां रूप आयेगा तो उसकी लीला भी आयेगी कि वो क्या करता है? फिर इच्छा होगी ये कहां जन्मा? कहां रहता है? उनके धाम की ओर भी गति होगी। मूल यात्रा होगी कलियुग में नाम से।

चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ।

और इतना सरल साधन छोड़कर मेरी समझ में नहीं आता कि लोग इतने कठिन-कठिन साधन में क्यों जाते हैं? कभी-कभी बड़े शोपिंग मोल में जो चीज़ मिलती है न इससे अच्छी चीज़ ओर बहुत कम दाम में रेंकडी में मिलती है! हरिनाम लो न प्यारे! सभी शास्त्रों का सार है प्रभु का नाम।

तो बाप, आओ, यजमान परिवार के साथ हम सब मिलकर ये नव दिवसीय रामकथा भगवान विष्णु के चरण में समर्पित करें। लेकिन विष्णु, हमने सुना है कि तेरे पास सब कुछ है। तो तुझे कथा क्यों दूं? लेकिन हे भगवन्, हे ठाकुर, हे परमविष्णु, ये नव दिवसीय कथा मेरे यजमान के साथ, मेरे श्रोताओं के साथ, मेरे एक सौ सत्तर देशों में सुननेवाले सभी श्रोताओं के साथ और इस कथा के साथ जहां-जहां से शुभ भावना जुड़ी है ये सब मानसिकता के साथ हे परमात्मा, हे विष्णु भगवान, तेरे चरणों में मैं अर्पित करता हूं, इसीलिए कि इस भूमि पर कुछ साल पहले बड़ा नरसंहार हुआ! और कहते हैं, कई लाख लोग मारे गये! जिसको मारे है! तू तो पालक है, संहारक नहीं है! चल, तू शायद चुक गया पालन करने में तो हम कथा का फल तूझे देते हैं। इनको सद्गति तो दे दे! इन छोटे-छोटे बच्चों से लेकर जिन्होंने जान गंवाई है इन सब को शुभगति प्रदान कर। और दूसरा भाग इस कथा का यहां के राजा, उसका राजपरिवार, यहां के आदरणीय प्रधानमंत्री महोदय, उपप्रधानमंत्री महोदय, पूरी सरकार, भारत के हमारे आदरणीय राजदूत महोदय और यहां का जन-जन सब की प्रसन्नता के लिए और सब के विकास और विश्राम के लिए हे विष्णु भगवान, हमनें जो फल तुझे दिया उसमें से आधा जो गये हैं उसकी सद्गति बांट दे और जो है उनकी प्रसन्नता और संपदा के लिए बांट दे। काम तुझे सोंप कर जा रहा हूं। क्योंकि हम अहेतु तेरा नाम लेते हैं। तो बाप, भगवान विष्णु के चरणों में ये फल मैं इसीलिए समर्पित करता हूं।

आख़िर में इक्कीस तारीख से चैत्र नवरात्रि का आरंभ हो रहा है। राम और 'रामचरित मानस' के अनुष्ठान के विशेष दिन है। न अपील है; आदेश तो है ही नहीं। केवल याद दिला रहा हूं। हो सके तो 'मानस'का पाठ करियेगा। विश्वमंगल के लिए, पर्यावरण के लिए, भीतरी-बहिर् प्रदूषणों के लिए। एडवान्स में मुबारक हो चैत्र नवरात्र आप सब को। 'रामचरित मानस' रूपी पराम्बा, परम शक्ति उसकी उपासना के दिनों की एडवान्स में बधाई देते हुए मैं आप से बिदा ले रहा हूं।

परमात्मा का नाम, विष्णु का नाम, अल्लाह का नाम, किसीका भी नाम लो। कलियुग है नाम की मौसम। हमारी कथा, हमारा सूत्र, हमारा हरिनाम, हमारा बुद्धपुरुष हमारी सल्तनत है। बेंक में पैसे जमा करने से बढ़ता है और हरि की बेंक में हरिनाम जितना बांटो इतना बढ़ता है। मैं ये देखता रहता हूं कि कथा में हमारा अच्छापन, हमारा बुरापन सब निकलने लगता है। रामकथा प्रभाव पर काम नहीं करती, स्वभाव पर काम करती है। आप का प्रभाव कैसा उस पर काम नहीं करेगी रामकथा। क्योंकि आप भरे हैं तो जितना भी रामकथा डालेगी, उभर जाओगे। रामकथा स्वभाव पर काम करने का तरीका है, मेरे भाई-बहन।

मानस-मुशायरा

ज़मानेभर के सवालों का जवाब दे दूंगा 'फ़राज़',
नमी आंखों कहती है कि मुझे तुम याद आते हो।

•

वो दूर होता तो उसे मैं ढूंढ लेता 'फ़राज़',
मेरी राह में बैठा है इसे पाउं कैसे ?

•

जब दिल खोल के रोये होंगे।
लोग आराम से सोये होंगे।

– अहमद फ़राज़

ये मोहब्बत का चराग है,
नफ़रतों की उसको हवा न दें।

•

मेरे पास तो आग के फूल थे,
फिर भी मेरी झोलीओं में भरे रहे।

•

शायद मुझे निकाल के पछता रहे हैं आज,
मेहफ़िल में इसीलिए लौट आया हूं मैं।

–बशीर बद्र

कांटों से भी मैंने प्यार किया है कभी–कभी।
फूलों को शर्मसार किया है कभी–कभी।
अल्लाह हे! ये बेखुदी, तेरे पास बैठकर,
तेरा ही इंतज़ार किया है कभी–कभी।

– 'साद' साहब

या तो कुबूल कर मेरी कमज़ोरियों के साथ,
या छोड़ दे मुझे मेरी तनहाईयों के साथ।

– दीक्षित दनकौरी

कवचिदन्यतोऽपि

माँ, मातृभूमि, मातृभाषा और मातृसंस्था को न भूले

'संतोकबा अवॉर्ड' अर्पण समारोह में मोरारिबापू का प्रेरक उद्‌बोधन

बाप! आज पूजनीया माँ के नाम से, पूण्यश्लोक नाम से गोविंदभाई और समग्र धोळकिया परिवार ने एक उपक्रम जो रचा, उसका एक ओर कदम लिया गया। और जिसमें हम सब मिलकर यहां उपस्थित तीन अपने-अपने क्षेत्र की महिमावंत प्रतिभाओं की वंदना करने के लिए एकत्रित हैं तब मैं जिस क्रम में यहां वंदना हुई उसी क्रम में चलूं। सब से पहले परम आदरणीय, मेरे लिए परम स्नेही डो. लोर्ड भीखुभाई पारेख; दूसरी वंदना हम सब ने की आदरणीया बहन सुधा मूर्तिजी, पूरी साउथियन कल्चरल को लिए पूरी गुरुपरंपरा को स्मृति में रखते हुए आपने हमारा प्रणाम कुबूल किया। और अभी दो-तीन बार कहा गया, 'सवाया गुजराती', ऐसे परम आदरणीय परम वैश्णव, ऐसे फाधर वालेस; परम स्नेही दाणीभाई, गोविंदभाई, आप सभी मेरे भाई-बहन। चाणक्यनीति में एक श्लोक है, वो मुझे इस प्रसंग पर प्रासंगिक लगता है। यह श्लोक है-

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलं अन्नं सुभाषितम्।
मूढ़ैः पाषाणखंडेषु रत्नसंज्ञा विधीयते।।

चाणक्य कहता है, इस पृथ्वी पर, धरा पर तीन ही रत्न है, 'जलं, अन्नं, सुभाषितम्।' पथ्थर के एक खंड को रत्न कहना चाणक्य कहता है, ये तो ठीक नहीं लगता। लेकिन मैं आज उसको ठीक कहने जा रहा हूं। क्योंकि गोविंदभाई ने, उसके परिवार ने, एस. आर. के. ने पाषाणखंड के रत्न का व्यापार करते-करते समाज में से तीन ओर मानवरत्न खोज लिए। तीनों से थोड़ा-बहुत संबंध; और हमारे भीखुभाई के साथ तो मेरा बहुत निकट का संबंध रहा लंडन के कारण, लोर्ड पोपट के कारण और विशेष तो आदरणीय गुणवंतभाई शाह के कारण। सुधाबहनजी को भी, अक्सर उनके बारे में साहित्यिक चर्चा होती रही। आप के बारे में मैं सुनता रहा। कभी थोड़ा पढ़ा। फाधर वालेस को कौन नहीं जानता?

तो, गोविंदभाई को पहले मैं साधुवाद देना चाहता हूं कि आप ने पाषाण के खंडों के रत्नों को तरासते-तरासते-तरासते फिर एक ओर तीन रत्नों को खोजकर हमारे सामने पेश किये, जो आज तीन रूप में हमारे सामने उपस्थित है। और यहां चाणक्य ये कहता है कि केवल पाषाण खंड को ही जो रत्न माने, 'मूढ़ैः।' ये तो मूरख है, जो केवल पथ्थर के टुकड़ों को हीरा माने, रत्न माने! उसको मूढ़ कहे। लेकिन मैं मूढ़ नहीं कह रहा हूं, पंडित कह रहा हूं गोविंदकाका को कि उन्होंने इसी रास्ते से एक ओर रत्न खोजकर हमारे सामने प्रस्तुत किया। और मुझे बड़ी खुशी ये है कि भीखुभाई तो प्रोफेसर है; वो भी एक शिक्षक, अध्यापक रहे। फाधर वालेस तो गणित, गुजराती सब के अध्यापक रहे। बहनजी भी है। आप तो इंग्लिश में बोल रहे थे। थोड़ा-बहुत कुछ मैं समझ सका। आप के पिताजी, दादाजी भी टीचर रहे। और मुझे आनंद हुआ कि इन शिक्षकों का सन्मान करने का सौभाग्य मेरे हाथों को प्राप्त हुआ। फाधर वालेस ने बहुत घटनाएं सुनाई। अपने अनुभव बहुत अच्छे-अच्छे और ये जरूरी था। हम को प्रेरणा दे ऐसे-ऐसे आप ने बहुत सुंदर प्रसंग सुनाये। ये ऐसे शिक्षक है। ऐसे प्रोफेसर है ये सब।

मैं प्रायमरी स्कूल का टीचर कुछ साल रहा। एक बार महुवा की कोलेज के प्रिन्सिपाल और स्टाफ के लोग और उसके संचालक मेरे पास आये और कहा कि हमारे कोलेज के विद्यार्थीओं को आप एक प्रवचन देने के लिए आओ। मैंने कहा, क्या मेरी बेईज्जती करवाना चाहते हो? एक तो कोलेज के लड़कें और मैं तीन बार मैट्रिक फैल हुआ आदमी! और मुझे उनके सामने क्यों पैश करते हो, जो उनके प्रोफेसरों का नहीं सुनते! बोले, नहीं बापू, आप का तो आदर करेंगे। आप आईये, आईये। तो मैं गया। मेरे साथ सब प्रोफेसर, प्रिन्सिपाल सब बैठे थे। मैंने बोलना शुरू किया। तो मैंने कहा, भाई, देखो, हम महुआ में पढ़ने आते थे तो सीधे घर से गांव में सीधे स्कूल में आते थे। और माँ ने कुछ काम बताया हो वो लेकर फ़िर सीधे घर चले जाते थे। वाया-वाया कहीं नहीं जाते थे! ऐसा मैंने कहा। और विद्यार्थीओं को सलाह देने लगा कि आप लोग सीधे कोलेज नहीं आते; वाया-वाया आते और सीधे घर नहीं जाते, वाया-वाया जाते! मैंने ऐसा कहा तो एक विद्यार्थी खड़ा होकर बोलने लगा कि बापू, माफ़ करना बेअदबी को लेकिन मुझे कुछ कहना है। मैंने कहा कि मैंने ये क्यों कहा? मैंने उकसाया क्यों? ये शांति से सुन रहे थे तो मैंने अपने आप ये क्यों उनको उकसाया? तो बोले, नहीं बापू, हम अदब रखेंगे लेकिन एक बात की आप हम को सलाह दे रहे हैं कि आप जब पढ़ते थे तो घर से सीधे स्कूल, स्कूल से सीधे घर और हम सब वाया-वाया आ रहे हैं! कभी पान के गल्ले पर गये! कभी गुटखा खाया! कभी वो देखा, कभी ये! सीधे आते

नहीं। लेकिन आप के साथ जो बैठे है ना, वो सब भी वाया-वाया ही आते हैं! लेकिन ये मुझे इसीलिए कहना है कि आज हमारे साथ जो बैठे हैं वो वाया-वाया आनेवाले नहीं, डायरेक्ट आनेवाले लोग है अपने-अपने क्षेत्र में। मैं प्रशंसा के लिए नहीं कहता। डो. साहब ने, लोर्ड साहब ने कितने सुंदर उन्नीसवीं शताब्दी, फ़िर बीसवीं शताब्दी, फिर अभी खुद खड़े हैं वहां तक का अर्थशास्त्र का एक सुंदर अभ्यास पेश किया! ये वाया-वाया लोग ऐसा नहीं कर सकते; ये डायरेक्ट आनेवाले सीधा जिसका लक्ष्य होता है, वही कर सकते हैं।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं यथतत् कवयो वदन्ति।।

कितना सुंदर आप ने कहा! बहनजी, आपने बहुत पूरा मैं समझ नहीं पाया, मेरा दुर्भाग्य! आप अंग्रेजी में और इतना स्वाभाविक बोल रहे थे लेकिन जितना समझ पाया, मुझे बड़ी खुशी हुई। और फाधर वालेस ने तो जैसे सुमितभैया ने कहा कि एक भी शब्द अंग्रेजी नहीं! ये तो गोविंदकाका ने उसको दबाव डाला कि कुछ बोलो, तब वो इंग्लिश में बोले। बाकी गुजराती में! चार बस्तु को कभी भूलना मत मेरे भाई-बहन!

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरियसि।

एक अपनी माँ को जो हमारी प्रसूता है, हमारी जनेता है। मुनव्वर राणा का एक शे'र क्वोट किया सुमितभाई ने। दाणीभाई ने कवि कागबापू का एक दोहा माँ के उपर का प्रस्तुत किया। एक तो जननी, जिसकी कूख से हम पैदा हुए। दूसरा जन्मभूमि। मैं साक्षी हूं गोविंदभाई का और ये सभी धोळकिया परिवार का कि ये लोग जन्मभूमि भी अभी तक नहीं भूले। करोडों कमाये, मुबारक! ओर कमाये, अल्लाह करे। लेकिन जन्मभूमि नहीं भूले। तो माँ; दूसरी जन्मभूमि; तीसरी मातृभाषा। स्पेन में रहनेवाले इतने बड़े विद्वान महापुरुष मातृभाषा पर इतनी भक्ति से बोल गये! हमें अपनी मातृभाषा को भी बहुत याद रखनी पड़ेगी। और चौथा अपनी मातृसंस्था; अपनी मातृसंस्था जिस स्कूल में हम पढ़े हो। और मैं अभी लाठी होकर वहां दूधाळा गया था। लाठी गया था एक फंक्शन में। वडलो, दादा के नाम से है। मुझे लगता है कि ये धोळकिया परिवार माँ को नहीं भूले हैं। जन्मभूमि को नहीं भूले हैं। जन्मभाषा-मातृभाषा को नहीं भूले है और मातृसंस्था को भी नहीं भूले हैं। इसीलिए एक साधु के नाते मैं साधुवाद देना चाहता हूं।

हमारे शास्त्रों में बाप, एक दशांश की पद्धति है कि आप अनुष्ठान करो तो भी इसका दसवां हिस्सा आप को हवन करना पड़ता है। आप यज्ञ कर देते, दसवां हिस्सा आप दूसरों के लिए निकाल दे। हर क्षेत्र में हमारा जो शास्त्रीय नियम है वो ये है कि आदमी अपनी आय का दसवां हिस्सा समाज के लिए निकाले। यहां तो बहुत बड़ी-बड़ी बात बहुत अच्छी बात हुई कि पूरी प्रोपर्टी वर्कर्स के नाम कर देना अथवा तो थोड़ा नफा लेना। जितना मैं समझा, कितने सुंदर विचार प्रस्तुत हुए! लेकिन हमारी जो पुरानी परंपरा थी कि दशांश; सौ रुपया कमानेवाला दस रुपया दूसरों के लिए यदि निकाल दे। प्रत्येक व्यक्ति शिवसंकल्प करके इतना करे तो मुझे लगता है कि अपने गांव में कोई अशिक्षित न रहे। कोई विधवा माँ-बेटी को कभी कोई चिंता न रहे। कभी कोई मरीज़ को बिना औषधि मुश्किल न पड़े। केवल दस प्रतिशत। और सौ रुपये में से दस रुपया निकालना ये तो कोई बड़ी बात है ही नहीं। हजार रुपया कमाये, सौ रुपये निकाल दे; कोई बड़ी बात नहीं। एक लाख कमाये वो दस हजार निकाल दे। आप कहे कि बापू, ज्यादा है! तो मेरे से जितनी आप को राहत दी जाय इतनी मैं दूं। तो,

एक लाख कमाओ तो दस हजार निकालना पड़े। ज्यादा लगता है तो पचास हजार कमाओ! मेरे से जितनी आप को राहत दी जाय, मैं दे सकता हूं! और ये भी ज्यादा पड़े तो पच्चीस हजार कमाओ! निर्णय आप पर। मैं इसीलिए दशांश की बात यहां कर रहा हूं कि शास्त्र के सिद्धांत को भी ओवरटेईक करनेवाले लोग आज हमारे पास मौजूद है। ये धनवान है इसीलिए प्रशंसा करने का मुझे कोई कारण नहीं। अल्लाह करे, कोई कारण कभी आये ना। लेकिन जननी को, जन्मभूमि को, जन्मभाषा को और जन्मसंस्था को न भूलनेवाले ऐसे रत्न परखनेवाले लोग दश प्रतिशत नहीं, मुझे लगता है कि बहुत ज्यादा प्रतिशत में ऐसा शुभ कार्य कर रहे हैं। और मैं आज सुबह की कथा में भी कह रहा था कि जिसस का एक वाक्य है, 'जो देगा उसको ओर दिया जायेगा और जो संग्रह करेगा उसका जो है वो भी छिन लिया जायेगा।' गुजरातीमें एक दोहा है-

धरम करे अेनुं धन वधे, धन वधे, मन वध जाय;
मन वधे तो मान वधे, वधत वधत वध जाय.

धर्म यानी हिन्दु धर्म, ईस्लाम धर्म; ईसाई धर्म, बौद्ध धर्म; मैं कोई एसे वर्गीकरण में जाना नहीं चाहता। पचपन साल की मेरी रामकथा की यात्रा मेरे गुरु की कृपा से, आप सब की शुभ कामनाओं से की; बचपन से लेकर पचपन तक मेरी रामकथा की जो यात्रा हुई, इनमें से मैंने धर्म की परिभाषा मेरे आंतरिक विकास और विश्राम के लिए जो चुनी है वो इतनी ही है- सत्य, प्रेम और करुणा। कौन मजहब? कौन धर्म? किन किनका इन्कार कर सकता है, यदि पूर्वग्रंथि से मुक्त हो तो। पूर्वग्रंथि से यदि पीडित हो तो कुबूल ना भी करे! धर्म यानी सत्य, प्रेम, करुणा। यहां गोविंदभाई ने पहले ही सुधाबहनजी के लिए, सुधा मूर्ति के लिए 'करुणामूर्ति' शब्द का प्रयोग किया। माँ के लिए भी 'करुणा'शब्दप्रयोग किया जाता है। और कोई भी व्यक्ति अपनी माँ पर जब बोलता है तब सब को ऐसा लगने लगता है कि मेरी माँ पर बोला जा रहा है, मेरी माँ पर बोला जा रहा है, क्योंकि करीब-करीब सब को अपनी माँ प्रत्ये ऐसा भाव होता है। गोविंदभाई जिस तरह माँ के शब्दों को बोलते-बोलते थोड़े ढ़ीले भी हुए। तो मेरे कहने का मतलब कि सत्य, प्रेम और करुणा ये जितनी मात्रा में हमारे जीवन में पड़े। ये मैं उपदेश नहीं दे रहा हूं। न मैं कथा में भी उपदेश करता हूं। मेरा अधिकार नहीं है उपदेश देना। मैं आदेश भी किसीको नहीं करता। और पहले कहा करता था कि मैं संदेश देता हूं। एक डाकिया का काम करता हूं। यहां से संदेश लेकर वहां पहुंच जाता हूं। और वो भी जितना हो सके असंग रह कर। हमारे सौराष्ट्र का एक कवि, दादभाई कवि, कवि दादल; उसने लिखा है-

जीव तुं थाजे टपालनो थेलो;
भले होय मेलो के घेलो;
पण जीव तूं थाजे टपालनो थेलो...

फ़कीरी मानी क्या? डाकिया का थेला! इसमें शादी की पत्रिका भी हो सकती है और किसीकी मृत्यु का आधा पोस्टकार्ड भी हो सकता है। जैसे पोस्टमेन के थेले को कोई अफसोस या प्रसन्नता नहीं होती।

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखत:।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा।।

तो, मेरे कहने का मतलब कि मैं उपदेश नहीं कर रहा हूं। उपदेश का मेरा अधिकार नहीं। आदेश नहीं दे रहा हूं। और संदेश। और मैंने तीनों क्षेत्र में देखा कि ये तीनों की वर्धी उनके कपड़ें एक रंग के होते हैं करीब-करीब। डाकिया जो होता है, पोस्टमेन उसके भी खाखी कलर के ही कुछ हलका-सा गेरुअे कलर के कपड़े होते हैं, जो संदेश देता है। और जो आदेश करता है पुलिस! 'अरे, ये यहां से हटा ले, हट जा!' आदेश ही! उनके कपड़े अकसर एक ही रंग के होते हैं! और जो उपदेश देते हैं वह साधु-संतों के कपड़ें का रंग भी ऐसा ही होता है। और मैंने देखा है कि इन मैं से एक भी काम करने जैसा नहीं है, क्योंकि तीनों को कुत्ते भोंकते है! तो, ये मेरा उपदेश नहीं।

मैं आज कथा में भी कह रहा था कि सत्य को लेकर एकवचन में देखो। सत्य मेरे लिए हो। दूसरा निर्वहन करे न करे चिंता छोड़ो। सत्य एकवचन में हो। प्रेम द्विवचन में हो, परस्पर हो; और करुणा बहुवचन में हो। सब के लिए करुणा यही धर्म। ऐसा धर्म जिसका बढ़ेगा उनका धन बढ़े। धर्म बढ़े उनका धन बढ़े। आप का धन बढ़ रहा है, आप का धंधा बढ रहा है, तो मुझे लगता है कि कहीं ना कहीं सत्य, प्रेम, करुणा होगा। लोर्ड साहब ने कहा कि आप कमाते हो। आप अपने वर्कर्स को देते हो। लेकिन जब मंदी आ जाती है तब फिर उसको हटा देते हो! मैं उसका साक्षी हूं कि इस आदमी ने (गोविंदभाइ ने) तीन साल की जब मंदी आइ और ये नवजवान लोग उनके जो पुत्र-पौत्र अपने वो रक्तके संबंध से जुड़े हुए है, इन लोगों ने कहा कि बहुत मंदी है आजकल डायमंड मार्केट में। और कर्मचारीओं को मुक्त करना पड़ेगा। गोविंदकाका ने कहा कि नहीं, यदि हम सब को परिवार समझते हैं, तो जब परिवार पर कष्ट आये तो क्या परिवार के अपने स्वजनों को हम घर से निकाल देंगे? यदि ये सब मेरा परिवार है, तो मैं किसीको मुक्त नहीं करूंगा। और ये लोग कह रहे हैं कि काका, चलेगा नहीं। बहुत मंदी है। बहुत घाटा जा रहा है। और आप ने कहा कि मुझे तीन महिने दो। फिर मैं आप की बात मानूंगा। मैं बहुत खुश हुआ।

सात बस्तु याद रखना। इनमें एक धर्म। धर्म वधे, वधाराय! ज्यादा नहीं कहना है!

धरम करे एनुं धन वधे,
धन वधे, मन वध जाय;

जिनके पास धन आता है; धर्म के नियम से धन आता है, उसका मन भी बड़ा विशाल होने लगता है। मन चौड़ा होने लगता है। मन वधे फिर जग में मान वधे। जगत में सन्मान और मान वधे। आ बधुं वधत-वधत वध जाय। लेकिन उसका एक नकारात्मक दोहा भी है कि-

धर्म घटे एनुं धन घटे।
धन घटे पछी मन घट जाया।

धन घटे फिर हम अकुला उठे! और फिर मन भी संकीर्ण होने लगे। और मन घटे तो जग में मान घटे। ये सब घटत घटत घट जाय!

मुझे लगता है, यहां कुछ ऐसा कार्य हो रहा है कि न मातृसंस्था को भूला जा रहा है, न मातृभाषा को भूली जा रही है, न मातृभूभि को भूली जा रही है और न संतोकबा को भूला जा रहा है। उनके आशीर्वाद से ये सब सत्कर्म हो रहा है। पहले भी मैं एक बार आया हूं। इसका मैं साक्षी हूं। हमारें यहां वासुदेव मेहता एक बहुत बड़े गुजराती पत्रकार थे। जो 'चित्रलेखा'में राजकीय कोलम लिखते थे। एक बार राजकोट में कार्यक्रम था। तो कार्ड में लिखा कि वासुदेव मेहता के शुभ हस्त से ये सन्मान दिया जायेगा। तो जब उसकी बोलने की बारी आई तो उसने कहा कि वासुदेव मेहता के शुभ हस्त से ये दिया जायेगा, इससे तो ज्यादा था कि कोई ऐसे को खोजते कि उसके शुद्ध हस्त से ये अवोर्ड दिया जाता। शुभ से भी ज्यादा शुद्ध की जरूरत हे। और आप गलती मत करना कि मैं ये कह रहा हूं कि मेरे हाथ से दिलवाया गया इसीलिए मेरे हाथ

शुद्ध है। प्लीज़, ऐसा नहीं समझना। लेकिन ऐसा काम करने से अपने हाथ विशुद्ध होते हैं। जरूर विशेष पवित्रता आती है। तो मैं तो अपनी पवित्रता के लिए आया हूं। मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। ये तीनों महानुभावों ने यहां आना कुबूल किया। और गोविंदभाई ने ये भी बताया कि इनको चुनने के लिए, खोजने के लिए किन-किन ने मेहनत की है। और ये तीन महानुभाव हमारे बीच है। हम सब ने मिलकर उसकी वंदना की है। मैं मेरी वंदना भी साथ-साथ प्रस्तुत करता हूं।

मैं पुनः हनुमानजी के चरणों में प्रार्थना करता हूं। एक श्लोक है आशीर्वाद का। पूरेपूरा आता तो है लेकिन मुझे पूरा बोलना नहीं। धन-धान्य बढ़ो; सुख-समृद्धि बढ़ो; वंशवृद्धि हो; ये मुझे आता है। मैं बोलनेवाला नहीं हूं। क्योंकि मैं ये बोलूं फिर बढ़े ना तो? ये सब आप टेप कर रहे हैं! और आप कहे कि बापू, आप बोले थे वो कुछ हुआ नहीं! वो घाटा हो गया, गड़बड़ हुई! तो मैं तो ये साहस लेना नहीं चाहता। तो पूरा श्लोक नहीं; मैं इतना गोविंदकाका तो जरूर कहूं, श्लोक की अंतिम पंक्ति में मेरी शुभकामना व्यक्त करूं कि-

वंशे सदैव भवताम् हरिभक्ति अस्तु।

आप के पूरे कुल में, आप के वंश में यही सद्भाव, यही सत्य की मात्रा बढ़े; यही प्रेम की मात्रा बढ़े और यही करुणा सब के लिए बहे, ऐसी हनुमानजी के चरणों में प्रार्थना करता हूं। और संतोक माँ के प्रताप से ये हो रहा है, इस माँ कि चेतना को भी मैं वंदन करके कहूं कि आप ओर आशीर्वाद दीजियेगा की जिससे ये परिवार ये सब बहुत परोपकार कर रहे हैं। दशांश क्या, बहुत बड़ा अंश निकाल रहे हैं। बस, परमात्मा आप से ऐसा करवाते रहे और बहुत जरूरी है कि हमें ऐसा करते-करते राजसत्ता हो, राजपीठ हो, कि व्यासपीठ हो कि धनपीठ हो कि खड़पीठ हो गांव की ये सब पीठवालों को चाहिए आख़िरी आदमी तक पहुंचने का प्रामाणिक प्रयास करे। जो गांधी ने कहा था आख़िरी आदमी, रश्किन से जो मंत्र लिया था गांधीबापू ने। हमारा कर्तव्य है कि हम अपनी सत्ता से, अपनी धर्मपीठ से, अपनी संपत्ति से, अपनी प्रतिष्ठा से आख़िरी व्यक्ति तक पहुंचे। ये हमारा पथ होना चाहिए। वर्ना ये समय बहुत दूर नहीं है! मैं कथाओं में कहता हूं कि जो आगे बैठते हैं और जो बिलकुल आख़िर में बैठते हैं, तो कथा जब पूरी होती है तो जो आख़िर मे बैठते हैं वो पहले निकलते हैं। और जो आगे बैठे हैं उसको उसी द्वार से यदि निकलना है तो देर से निकलना होता है। यहां आखरी आदमी कब पहला हो जाय और पहला आदमी कब आखरी हो जाय उनका पता नहीं चलता! गंगासती के बचनों से समापन करूं-

वीजळीने चमकारे मोती रे परोववुं पानबाई...

जलाराम बापा ने जब अपनी पत्नी का दान दे दिया था तब कहते हैं, सताधार में झालर और शंख बजने लगे थे! तो सताधार के महंतबापू ने उस दिशा में अपना मुख रख कर कह दिया था कि लगता है, जलाराम ने बीजली के कौंध में मोती पिरो लिया है! गोविंदभाई, मुझे लगता है कि आपने माँ की कृपासे आपके जो पूज्य संतों, महापुरुषों हो उनकी कृपा से, आपके स्नेही-शुभेच्छकों की शुभकामनाओ से, आपके वर्कर्स की दुआओं से 'वीजळीने चमकारे मोती परोव्युं छे।'

('संतोकबा अवॉर्ड' अर्पण समारोह सुरत (गुजरात) में प्रस्तुत वक्तव्य : ता. ८-२-२०१५)

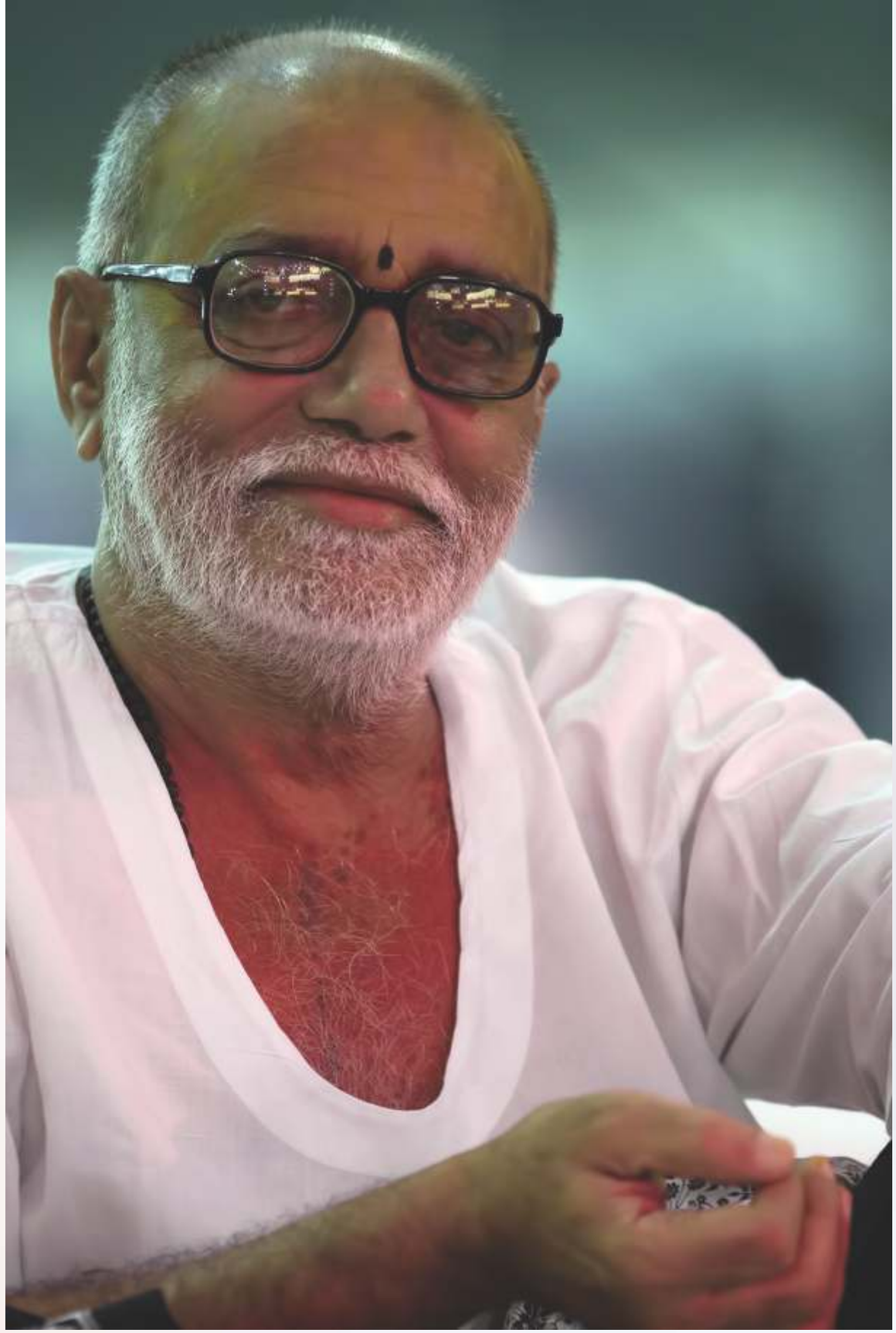

विष्णु भगवान की चार भुजाएं है। हमारी आस्था ने विष्णु के चार हाथ में चार वस्तु पकड़वाई है-शंख, चक्र, गदा और पद्म। भगवान विष्णु के हाथ में जो शंख है ये वाणी का प्रतीक है। हमारी वाणी शंख की तरह धवल हो, उज्वल हो। दूसरा, चक्र। चक्र गति का प्रतीक है; परिवर्तित जीवन का प्रतीक है। गति और प्रगति अपने हाथ में होनी चाहिए, उधार नहीं। तीसरा है गदा और चौथा पद्म। गदा कठोरता का प्रतीक है, पद्म कोमलता का प्रतीक है। गदा एक पकड़ का प्रतीक है, कमल असंगता का प्रतीक है। भगवान विष्णु के हाथ में चार चीजें हमारी मनीषा ने जो पकड़वाई है, ये बड़ी सांकेतिक है।

-मोरारिबापू

॥ जय सीयाराम ॥